CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13.५

समयसार भाष्यम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्ी 'श्रीमत्सह-
ा महानगरी
ुर की
नी वाणी
साथ ही
रस्वती के
र्ी जी की
चातुर्मास

भाव्य
ो।

यरत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१
प्रा० ८०

卐

समयसार भाष्यम्

(परमपूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत)

भाष्यकार :

ज्ञानमूर्ति अध्यात्मयोगी श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी

श्रीमत्सहजानन्द जी महाराज

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं०...८०...
दिनांक...२.७.२...७४
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी-५

प्रकाशक :

श्री सहजानन्द वर्णी चातुर्मास समिति

कानपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"समयसारभाष्यम्"

परमपूज्यश्रीमत्कुन्दत्कुन्दार्यप्रणीतसमयसारस्य
अध्यात्मयोगि–श्रीमत्सहजानंदविरचितम्

समयसारभाष्यम्

स्वस्ति समयसाराय सहजानन्दसिद्धये ।
भाष्यं समयसारस्य भूयाच्चिदनुभूतये ।।

स्वस्तिशब्दस्य नमःश्रेयःस्वच्छकल्याणाद्यनेकार्थत्वात् सहजानन्दसिद्धये चिद्रूपं संस्मर्य स्वस्तिशब्देनार्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुशास्त्ररत्नत्रयधर्मान् नत्वा चिद्रूपं संस्मर्य सहजानन्दसिद्धये श्रीमत्कुंदकुंदर्षिवरप्रणीतसमयसाराय श्रेयः कृत्वा सहजानन्दसिद्धये लक्षितशुद्धोपयोग शुभोपयोगप्रेरितयोगनियुक्तं सययसारस्य भाष्यमिदं स्वस्य चिदनुभूतये भूयात् ।

तथाहि—

सहज आनन्दकी सिद्धिके लिये समयसारको नमस्कार हो, समयसारके प्रति मङ्गलमयताकी भावना हो तथा सहज आनन्दकी सिद्धिके लिये विधीयमान यह समयसारका भाष्य चित्स्वभाव अर्थात् समयसारकी अनुभूतिके लिये होवे ।

स्वस्ति शब्दके नमस्कार, श्रेय, स्वच्छ (सु अच्छ), कल्याण आदि अनेक अर्थ हैं, उन सब अर्थोंके प्रयोजक सहज आनन्दकी सिद्धिके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्स्वभावका संस्मरण करके, स्वस्ति शब्दके द्वारा अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु व रत्नत्रयधर्मको नमस्कार कर चित्स्वभावका संस्मरण करके; सहज आनन्दकी सिद्धिके लिये आचार्य श्रीमत्कुन्दकुन्द ऋषिवर द्वारा प्रणीत समयसारके लिये श्रेय करके अथवा समयसारका श्रेय मान करके; सहज आनन्दकी सिद्धिके लिये, लक्ष्यमें लिया है शुद्धोपयोगको जिसने ऐसे शुभोपयोगसे प्रेरित शुभ मन वचन कायके नियोगमें विहित समयसारका यह भाष्य निज चैतन्य स्वभावकी अनुभूतिके लिये होवे।

अब समयसार शब्दमें कितने पवित्र तत्त्व आते हैं इसका विवरण करते हैं:—

श्रीमदर्हंत्परमदेवः समयसारः—सं सम्यक् स्याद्वादव्यक्तिमूलत्वात् वस्तु अयतां निश्चिन्वतां सातिशयमिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्टिश्रावकविरतकरणत्रयवर्तिसूक्ष्मसाम्परायोपशान्त - क्षीणकषायानां निर्मलचित्तानां पूज्यत्वेन आप्तत्वेन सारत्वात्, सरति गच्छति सर्वोत्कृष्टत्वमिति निरुक्तेः।

अन्तरङ्ग एवं वहिरङ्ग लक्ष्मीसे सहित अर्हन्त परम देव समयसार हैं (सम्+अय+सार हैं) सम् अर्थात् स्याद्वादकी प्रकटताके मूलपना होनेके कारण सम्यक् प्रकारसे वस्तुका अय अर्थात् निश्चय करने वाले निर्मल चित्तयुक्त सातिशयमिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, श्रावक, महाव्रती, अधःकरणवर्ती मुनि, अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय आत्मावोंके पूज्य होनेसे तथा स्वयं आप्त होनेसे सार हैं। सारका अर्थ है—जो सर्वोत्कृष्टताको सरे याने प्राप्त हो वह सार है।

भावार्थ-अर्हन्त भगवान समयोंके सार है अर्थात् ज्ञानियोंके पूज्य हैं, अतः समयसार हैं।

श्रीमत्सिद्धपरमात्मा समयसारः—समं निर्विकल्पस्वसंवेदनलक्षणसमाधिवलजातं साम्यं यातां प्राप्नुवतां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयानां साधूनां ध्येयत्वेन तथैव स्वसाध्यत्वावच्छिन्नतया प्रयततां प्रतिच्छदंस्थानीयत्वेन ज्ञानानन्दरत्नानां परां काष्ठां प्राप्तत्वेन निःशेषतया च कर्मनोकर्मरूपवाह्यमलापेतत्वेन सारत्वात् ।

श्रीसिद्ध परमात्मा समयसार हैं (सम+य+सार हैं) समको अर्थात् निर्विकल्पस्वसंवेदन रूप समाधिके बलसे उत्पन्न हुई समताको य अर्थात् प्राप्त होनेवाले समयोंके (साधुवोंके) ध्येय रूप होनेके कारण तथा निजके साध्यपनेकी सहितता होनेके कारण उसी प्रकार प्रयत्न करने वालोंके उदाहरणरूप होनेके कारण तथा ज्ञान व आनन्द-रूप रत्नोंकी परम उत्कृष्टताको प्राप्त होनेके कारण और समस्तरूपसे कर्म नोकर्मरूप वाह्यमलोंसे भी रहित होनेके कारण सिद्ध परमेष्ठी सार हैं ।

भावार्थ-सिद्ध भगवान समयोंके अर्थात् समताके प्राप्त करने वाले साधुवोंके ध्येय होनेसे सार हैं अतः सिद्ध भगवान समयसार हैं ।

श्रीमदाचार्यपरमेष्ठी समयसारः—सं सम्यक् समिति-गुप्तिगर्भं अयतां निश्चयव्यवहारपथप्रस्थापितात्मचरण-चरणाभ्यां स्वस्मिन्नेव गच्छतां समयानां साधूनां दीक्षाशिक्षा-प्रायश्चिताद्यात्मशोधननिमित्तप्रक्रियोपकारित्वेनाचारव्यव - हारापरिश्रावित्वाधारप्रकारायापायदिगुत्पोडसुखावहत्वेन सार-त्वात् ।

श्री आचार्य परमेष्ठी समयसार हैं (सम् + अय + सार हैं)—सं अर्थात् सम्यक् रूपसे (समिति गुप्ति सहित) अयोंके अर्थात् निश्चय सम्यक् चारित्र व व्यवहार सम्यक्चारित्रके द्वारा अपने आत्मामें प्रवेश करनेवाले समयोंके (साधुवोंके) दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्त आदिक आत्मशोधनके निमित्त प्रक्रियावोंके उपकारी होनेसे व आचार व्यवहार, अपरिश्रावित्व, आधार, प्रकार, आयापायदिक्, उत्पीडत्व सुखावहत्व गुणके कारण आचार्य परमेष्ठी सार हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-समयोंके अर्थात् साधुवोंके उपकारी होनेसे आचार्य परमेष्ठी समयसार हैं।

श्रीमदुपाध्यायपरमेष्ठी समयसारः—सं सम्यक् प्रकारेण परस्परमवाधमानतया याथातथ्यरूपेणायंति निश्चिन्वन्ति वस्तुतत्त्वं भव्या येन भावेन शब्देन वेति निरुक्तेः समयः सिद्धान्तः, स चासौ स्रियते प्राप्यते निमित्तभावेनावगम्यते येन विशुद्धात्मना स आचार्येनापि प्रमाणितः सकलसाधुजनवृन्दसेव्यस्त्रिगारवदूरस्थः समस्तसिद्धान्तसारवेदी स्याद्वादप्ररूपकः स्वशुद्धलक्ष्याच्युतः कृपालुरुपाध्यायः।

श्री उपाध्यायपरमेष्ठी समयसार (सम्+अय+सार) हैं—सम् अर्थात् सम्यक् प्रकारसे परस्पर वधित न होते हुए सही रूपसे भव्य जीव जिस भावके द्वारा वस्तुतत्त्वका अय अर्थात् निश्चय करते हैं उसे कहते हैं समय याने सिद्धान्त। वह सिद्धान्त जिस विशुद्धात्माके द्वारा सरा जाता है जाना जाता है तथा जो आचार्यके द्वारा भी प्रमाणित किया जाता है तथा जो सर्व साधुजनोंके द्वारा सेवनीय है तथा सातगारव रसगारव ऋद्धिगारव इन तीनों गारवोंसे दूर हैं तया जो समस्त सिद्धान्तके सारके ज्ञाता हैं, स्यद्वादके प्ररूपक हैं, अपने शुद्ध लक्ष्यसे अच्युत हैं ऐसे कृपालु साधु उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

भावार्थ-समय अर्थात् सिद्धान्त जिस साधु द्वारा प्राप्त किया जाता है वह उपाध्याय परमेष्ठी समयसार है।

श्रीमत्साधुपरमेष्ठी समयसारः—मयेषु गमनेष्वाचरणेषु सारः रत्नत्रयम् स्वाधीनशाश्वतसत्यसुखमूलत्वात्तेन सह वर्तते स समयसारः स्वशुद्धात्मतत्त्वावलोकननिःशङ्कः संज्ञातस्वस्वसत्तावस्थचिदचिद्रूपत्वेन निर्मलोपयोगः स्वात्मोन्मुखतया रागद्वेषप्रणिधानविरहितः साधुरिति यावत्।

श्री साधु परमेष्ठी समयसार (स+मय+सार) हैं—मयोंमें अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अचरणोंमें सार रत्नत्रय है याने मयसार रत्नत्रयको कहते ह। उस मयसार से सहित जो रहते हैं वे समयसार हैं अर्थात् साधु परमेष्ठी समयसार है। ये अपने शुद्ध आत्मतत्त्वके अवलोकनमें निःशङ्क हैं, पदार्थोंकी अपनी अपनी सत्तामें रहने वाली चिद्रूपता व अचिद्रूपताका ज्ञान होनेसे निर्मल उपयोगवाले हैं, निज आत्माकी उन्मुखता होनेसे रागद्वेषके उपयोगसे रहित हैं वे साधु परमेष्ठी समयसार हैं।

श्रीमत्केवलिप्रणीतपरमागममोपि समयसारः-सं सम्यक् सम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनमाश्रित्य स्वस्वाभिमतं तत्त्वं अयते ज्ञायते यैर्यैः भावैर्वाक्यैर्वा ते समयाः स्वरूपभेदाभेदकार्यकारणविपर्यासरहितस्याद्वादात्मकाः सिद्धान्तास्तेषु सर्वतोमुखदृष्टित्वेनादृष्टेष्टाविरोधत्वेनानुल्लंघ्यत्वेन याथात्म्योपदेशकत्वेन सर्वहितस्वरूपत्वेन सर्वोत्कृष्टत्वात्सारः।

श्रीमत्केवली भगवान द्वारा प्रणीत परमागम भी समयसार (सम्+अय+सार)--सं अर्थात् भले प्रकारसे सम्बन्ध अभिधेय शक्यानुष्ठान इष्ट प्रयोजनका आश्रय करके अपना अपना अभिमत तत्त्व जिन जिन भाववाक्योंके द्वारा जाना जाता है उनको समय अर्थात् सिद्धान्त कहते हैं। सिद्धान्त स्वरूपविपर्यास, भेदाभेदविपर्यास व कारण-विपर्यास इन तीनों विपर्यासोंसे रहित स्याद्वादात्मक होते हैं, उनमें यह परमागम सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त है, क्योंकि इसकी सर्वनयोंकी दृष्टि होनेसे यह प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंसे अबाधित है, इसी कारण अनुल्लङ्घ्य है माने इसका कोई खण्डन नहीं कर सकता, वस्तुस्वरूप के अनुसार उपदेश होनेसे सर्व जीवोंके हितरूप है। इस प्रकार यह परमागम समयसार है।

श्रीमद्ररत्नत्रयलक्षणधर्मोपि समयसारः--सं सम्यक्त्वं दुरभिनिवेशविमुक्तत्वेन समीचीनरूपत्वात्, अयः ज्ञानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानपरिणत्यैव भावस्वरूपस्यात्मनो गमनात्, सरणं वाह्यतोशुभयोगोपयोगतो निवृत्य शुभे सरणं चलनं अथवा समस्तवाह्ययोगोपयोगतो निवृत्य स्वात्मन्येव सरणं विहरणं चारित्रम् तेषां समुदायात्मको भावः समयसारः।

ज्ञानानन्दलक्ष्मीयुक्त रत्नत्रयरूप धर्म भी समयसार (सम्+अय +सार) है--सं का अर्थ सम्यक्त्व है, क्योंकि सम्यक्त्व खोटे अभिप्राय से रहित होनेसे समीचीनरूप है। अयका अर्थ ज्ञान है, क्योंकि ज्ञान-परिणतिके ही द्वारा भावस्वरूप आत्माका अयन अर्थात् ज्ञान (गमन) होता है सार नाम चरित्रका है, क्योंकि वाह्य अशुभ योग और उप-योगसे हटकर शुभमें सरण करने याने चलनेको सार कहते हैं। अथवा समस्त वाह्यके योग और उपयोगसे निवृत्त होकर निज आत्मा-में ही सरण करने याने विहार करनेको चारित्र कहते हैं। इस प्रकार सम=सम्यक्त्व, अय=ज्ञान, सार=चारित्र है और इन तीनोंका समुदायात्मक जो भाव है वह समयसार है याने रत्नत्रयरूप धर्म है।

मुमुक्षुवृन्दध्येयश्चिद्रूपोपि समयसारः—सं सम्यक् प्रकारेण त्रिकालं स्वगुणपर्यायान् अयंति गच्छन्ति प्राप्नु-वन्ति ते समयाः सकलपदार्था इति यावत् तेषु सारः आत्मा तत्रापि सारश्चिद्रूपः स्वयमुच्चैश्चकचकायमाननिर्मलनिज-महः समयसारः।

मुमुक्षुजनोंका ध्येयरूप चैतन्यस्वभाव भी समयसार (सम्+अय +सार) है—सम्=सम्यक् प्रकारसे याने भूत भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें अपने गुणपर्यायोंको जो अयंति अर्थात् प्राप्त होते हैं उन्हें समय कहते हैं। इससे समय का अर्थ हुआ समस्त पदार्थ। समस्त पदार्थोंमें सार है आत्मा और आत्मामें भी सार है चैतन्य स्वभाव जोकि स्वयं ही उत्कृष्टरूप से चकचकायमान निर्मल निजतेजस्वरूप है। इस प्रकार समयसारका अर्थ हुआ चैतन्यस्वभाव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहजानन्दसिद्धिः समयसारः—समयेषु कालक्षणेषु सर्वोत्कृष्टपरिणतित्वात् सारः समयसारः ।

सहज आनन्दकी सिद्धि भी समयसार है—क्योंकि सब समयोंमें याने सब कालक्षणों में अर्थात् आत्माकी समस्त परिणतियोंमें सर्वोत्कृष्ट सार परिणति सहज आनन्दकी सिद्धि है । अतः सहजानन्दसिद्धि समयसार है ।

प्रकृतग्रन्थोपि सममसार :—प्रथमकरणचरणद्रव्यानुयोगरूपेषु समयेषु सिद्धान्तेषु मोक्षोपायमूलभूतभेदविज्ञानप्रतिपादकत्वेन सर्वशास्त्रफलोपायप्रदर्शकत्वेन सारः समय साराद्वः समयसारः । उक्तं च पूज्यपादैः—"जीवोन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः । यदन्यदुच्यते किंचित्सोस्तु तस्यैव विस्तरः" । अथवा समः सद्दृशः अयो बोधः समयः स एव सारः समयसारः द्रव्यदृष्ट्या लक्ष्यीभूतस्तस्य प्रतिपादकत्वादेष ग्रन्थोपि समयसारः ।

प्रकृतग्रंथ (यह समयसार ग्रंथ) भी समयसार है—प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगरूप जो समय है याने सिद्धान्त हैं उनका सारभूत यह समयसारनामक ग्रंथ है, जोकि यह शास्त्र मोक्ष के उपायोंमें मूलभूत जो भेदविज्ञान है उसका प्रतिपादक है और समस्त शास्त्रोंका फल जो आत्मशुद्धि है उसके उपायका प्रदर्शक है । अतः यह समयसार ग्रंथ भी समय-सार है ।

अथवा संगतः सर्वज्ञानेष्वनुगतः अयः प्रतिभासः समयः स एव सारो द्रव्यदृष्टया लक्ष्योभूतस्तस्य प्रतिपादकत्वादेष ग्रन्थोपि समयसारः ।

अथवा संगतः अर्थात् समस्त ज्ञानोंमें अनुगत जो अयः अर्थात् प्रतिभास है वह समय है और यह सहजज्ञानशक्ति ही सार है जोकि द्रव्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिसे लक्ष्यभूत है, उस सहजज्ञानस्वभावका प्रतिपादक होनेसे यह ग्रंथ भी समयसार है।

अथवा सम्यक् प्रमाणान्तराविसंवादित्वेन ईयते परिच्छिद्यते इति समयः स एव सारो विसंवादितत्त्वस्य सत्य-श्रद्धानिबंधनत्वाभावात्तस्य प्रतिपादकत्वात्प्रकृतग्रन्थोपि समयसारः।

अथवा सम्यक् अर्थात् प्रमाणान्तरोंके अविरोधरूपसे ईयते अर्थात् जो जाना जाता है वह समय है, वह ही सार है, क्योंकि विसंवादवाले तत्त्व सत्यश्रद्धाके कारण नहीं होते। अतः प्रमाणप्रमेयोभयरूप तत्त्व सयसार है उसका प्रतिपादक होनेसे यह प्रकृत ग्रंथ भी समयसार है।

तदेवं समयसाराय स्वस्ति कृत्वा नमस्कारं विधाय, सु अस्तीति प्रमोदं भावनां विधाय शुद्धिमधिगन्तुकामः सूत्रमाश्रये—

इस प्रकार समयसारके लिए स्वस्ति करके अर्थात् मंगलमयताका श्रेयोभिवन्दन करके, नमस्कार करके, यही उत्तम तत्त्व है इस प्रकारसे प्रमोद और भावना करके आत्मशुद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ मैं सूत्र (गाथा सूत्र) का आश्रय करता हूँ—वंदित्तु इत्यादि :—

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं ॥१॥

एष किल सहजज्ञानानंदस्वभावोवशिष्टपूर्वकृतपरात्मदृष्टि-जनिजास्थैर्यसंस्कारोप्यच्युतपरमपारिणामिकध्रुवस्वरूपचैतन्य-चेतनोहमात्मा स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावसहजविकासितया पर्यायेनादिमत्तां बिभ्राणामपि टंकोत्कीर्णप्रतिबिम्ब-वदशेषावरकपरभावाभावेन सह प्रकटितत्वात्स्वभावपरिणत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वाच्च ध्रुवामनत्ययां गतिं प्राप्तान् स्वभावोन्मौख्यशुद्धोपयोगीकृतस्वरूपनिश्चलत्वेनाचलत्वावच्छिन्नां गतिं प्राप्तान् शुद्धज्ञानानंदात्मकत्वेन सर्वद्रव्यपरिणामेभ्योस्वभावभूतभावान्तरेभ्यो विलक्षणत्वादनुपमां गतिं प्राप्तान् सर्वसिद्धान् भावद्रव्यपरिणतिभ्यां नमस्कृत्य द्रव्यपरिणतिविधानेन परात्मसु तान्संस्थाप्य पारमेश्वरं पारमैश्वर्यसाक्षात्कारिश्रुतकेवलिभणितं वक्ष्यमाणस्यानुभवत्वात्प्रत्यक्षीभूतमिदं समयप्राभृतं भाववाचा सह द्रव्यवाचापि वक्तुं संयतै ।

ध्रुव, अचल व अनुपम गतिको प्राप्त समस्त सिद्धोंको नमस्कार करके अहो भव्यजनो ! श्रुतकेवली द्वारा कथित समय प्राभृतको कहूँगा।

यह सहज ज्ञानानन्द स्वभाव वाला, अवशिष्ट है पूर्वकृत परमें आत्मदृष्टिसे उत्पन्न निजमें अस्थिरताका संस्कार जिसका, तो भी परम पारिणामिक ध्रुवस्वरूप चैतन्य स्वभावसे च्युत न होने वाला,-चेतन मैं आत्मा सर्वसिद्धोंको भावपरिणति व द्रव्यपरिणतिसे नमस्कार करके द्रव्यपरिणतिके विधानसे परजीवोंमें सिद्धोंको स्थापित करके परमेश्वर अर्हन्त भगवानसे समागत तथा परमेश्वरताका साक्षात्कार करने वाले श्रुतकेवलीके द्वारा कथित इस समय प्राभृतको, जो कि आगे कहे जाने वाले भावका अनुभव होनेसे प्रत्यक्षीभूत है, भाववचन के साथ द्रव्यवचनसे भी कहनेके लिये यत्नशील होता हूँ।

यो हि यदर्थी स तद्वन्तं स्मरतीति नैराश्यापरपर्यायनिजपदं सिसिधित्सुरार्यों मया कीदृग्भवितव्यमिति पर्यनुयोगे समुत्तरस्वरूपान्नैराश्यामृतमयान् सर्वसिद्धान् स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभावरूपभवननमस्कारेण वचनात्मक द्रव्यनमस्कारेण च प्रथमत एव वन्दते ।

इस गाथामें जिन सिद्ध भगवानको नमस्कार किया है वे सिद्ध प्रभु कैसे हैं इसका विवरण करते हैं—अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावके सहज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकास होनेसे पर्यायसे आदिमत्ताको धारण करती हुई भी (पर्यायसे सादि होनेपर भी) टङ्कोत्कीर्ण प्रतिबिम्बकी तरह समस्त आवरण करनेवाले परभावके अभावके साथ ही प्रकट होनेसे और स्वभावमें परिणत होनेसे ध्रुव अर्थात् अविनाशी गतिको प्राप्त सिद्ध भगवान हैं। स्वभावकी उन्मुखतासे शुद्धोपयोग रूप किये गये निज स्वरूपकी निश्चलताके कारण अचल (अविचल) गतिको प्राप्त सिद्ध भगवान हैं। शुद्ध ज्ञानानन्दात्मकताके कारण सर्व द्रव्योंके परिणमनोंसे और अस्वभावभूत भावनाओंसे (रागादिभावोंसे) विलक्षण होनेसे अनुपम गतिको प्राप्त सिद्ध भगवान हैं।

जो जिस चीजका अभिलाषी होता है वह उस चीजवालेको स्मरण करता है इस न्यायसे नैराश्यरूप निज पदकी साधनाका अभिलाषी आर्य पुरुष "मुझे कैसा होना चाहिये" इसके उत्तरस्वरूप तथा नैराश्यअमृतमय सर्वसिद्धोंको अपने आपमें ही आराध्य आराधक भावरूप होने स्वरूप भावनमस्कारके द्वारा और वचनात्मक द्रव्यनमस्कारके द्वारा पहिले ही वन्दता है।

स्वास्थ्यप्रयोगविधिविदग्धविधिविषद्रुममूलं स्वात्मसंसाधनरूपं शुद्धोपयोगमयं लोकोत्तरकार्यमहोत्सवं विदधातुकामो निर्व्युच्छेदनिजकार्यपरिसमाप्तये स्वाजातीयान् शुद्धतत्त्वप्रतिष्ठितान् महतो महनीयान् विशिष्टावान्तरसत्तोपयोगजचैतन्यच्युत्यरुचित्वात् वृहत्कार्यसंरंभे कार्याश्रयाधिक्यप्रतिष्ठाप्रवृत्तेश्च न तु द्वित्रिकान् अपि तु सर्वानेव सिद्धान् निमंत्रयति स्वात्मनि च महादरं निदधाति।

निज आत्मामें स्थिरताके विधानसे जला दिया जाता है कर्मरूपी विषवृक्षके मूलको जिससे ऐसे स्वात्मसिद्धिरूप शुद्धोपयोगमय लोकोत्तम कार्यके महोत्सवको करनेका अभिलाषी अन्तरात्मा निर्विघ्न निजकार्यकी परिसमाप्तिके लिए निज जातीय, शुद्ध तत्त्वमें प्रतिष्ठित, महान्से भी महनीय एक दो जीवको ही नहीं अपितु सर्वसिद्धोंको निमन्त्रित करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, महान् आदरपूर्वक निज आत्मामें स्थापित करता है; क्योंकि विशिष्ट आवान्तर सत्ता अथवा चैतन्य स्वभावका उपयोग हो जानेके कारण जिसको चैतन्यावलम्वनसे च्युत होनेकी दशासे अरुचि उत्पन्न हो गई है और बहुत महान् कार्यके संकल्पमें कार्यके आश्रयभूत सिद्धात्माओंकी अधिकाधिक प्रतिष्ठा करनेकी प्रवृत्ति रही ह।

सर्वसिद्धप्रयोगेन किल सिद्धमेतन्न खलु कश्चिदेको-सिद्धोनिष्पन्नोनादिशुद्धः सृष्टिकारणभूतोपरः परमेश्वरः समस्ति परमात्मपदे तिष्ठतां सर्वात्मनां स्वस्वगुणपरिणतानां कस्यापि कदापि यमनियमसमाध्यादिवहिरंगविधिना तत्त्वतः स्वतत्त्वे चैंतन्यलक्षणे चेतनेन सिद्धत्वाद्विश्वेषामर्थाणां च स्वस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावपरिणततत्त्वप्रसाधकविज्ञानसंसिद्ध -त्वाच्च।

"सर्वसिद्ध" शब्दके प्रयोगसे यह सिद्ध है कि कोई ऐसा एक अलग परमेश्वर नहीं है जो कि सिद्ध न हुआ हो जिसमें शुद्ध पर्याय उत्पन्न न हुई हो, जो अनादिसे ही शुद्ध हो व सबकी सृष्टिका कारणभूत हो।

किन्तु, परमात्मस्वभावमें स्थित व अपने-अपने गुणोंमें परिणत सर्व आत्माओंमें किसीके जिस किसी समय यम, नियम, समाधि आदि वहिरङ्ग विधिसे व निश्चयसे चैतन्यस्वरूप निजतत्त्वमें संचेतन होनेसे सिद्धपना प्रकट होता है। यह बात "समस्त अर्थ अपने-अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावमें ही परिणत होते हैं" इस तत्त्वकी सिद्धि करनेवाले विज्ञान (साइंस) से भी सिद्ध होती है।

वंदित्तु वोच्छामीत्यपूर्णपूर्णक्रियाद्वयप्रदर्शनमाचार्यस्य स्वयंप्रभुत्वश्रद्धां श्रोतृप्रभुत्वश्रद्धां चाख्याति। कुतः? प्रभुत्वसिद्ध्युपायवर्णनसाफल्यान्यथानुपपत्तेः। यतो हि स्वसिद्धत्वस्वीकृतिं विना सिद्धत्वसत्यसंदेशोप्यशक्यः पर-स्मिंश्च सिद्धत्वस्वीकृतिं विना स्वप्रयोजकतासाधकशक्त्यज्ञाना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चछ्रोतुः श्रेयस्यप्रवृत्तेः। वस्तुतश्चापि सिद्धानां स्वात्मनि स्थापनां विना निजसिद्धत्वस्वभावस्वीकृतिं विना सिद्धभावनमस्कृतिर्न युज्यतेतः स्वात्मसत्यगौरवानुभूत्यार्यो नमस्करोति। नमस्कारोयं सहजानन्दचैतन्यमहत्तोपयोगप्रभाव एव वर्तते। द्विविधा हि वंदना भाववंदना द्रव्यवंदना चेति। तत्र हि भाववंदना शुद्धज्ञानानंदघनस्वभावोहमिति सुदृढप्रतीत्या रागद्वेषवृत्तीन् विस्मृत्य विरागं स्वलक्ष्ये स्थिरीभवनम्। द्रव्यवंदना च निर्दोपसर्वज्ञपरमदेवाधिदेवसत्स्वरूपलक्ष्यविधिना समयसारावस्थानाम्महनीयानां वहुसन्मानवृत्तिः।

"वंदित्तु वोच्छामि" (वन्दना करके कहूँगा) इस प्रकार अपूर्ण क्रिया व पूर्ण क्रिया दोनोंका दिखाना आचार्यके स्वयंकी प्रभुताकी श्रद्धाको व श्रोताओंकी प्रभुताकी श्रद्धाको प्रकट करता है, क्योंकि यदि वक्ता व श्रोता दोनोंके प्रभुताका श्रद्धान न हो तो प्रभुताकी सिद्धिके उपायके वर्णन करनेकी सफलता हो नहीं सकती।

इसका कारण यह है कि अपने आपमें सिद्धपना होनेकी स्वीकृतिके बिना सिद्धत्वका सत्यसंदेश देना भी अशक्य है और दूसरेमें (श्रोतामें) सिद्धपना होनेकी स्वीकृतिके बिना अपने प्रयोजनकी सिद्धि करनेवाली शक्तिका ज्ञान न होनेसे श्रोताके कल्याणमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

और, वास्तवमें भी सिद्धोंकी निज आत्मामें स्थापना किये बिना अथवा निज आत्माके सिद्धत्वस्वभावकी स्वीकृति किये बिना सिद्धोंका भावनमस्कार नहीं हो सकता, अतः निज आत्माके सत्य गौरवकी अनुभूतिके साथ आर्य पुरुष नमस्कार करता है। यह नमस्कार सहजानन्दचैतन्यस्वभावके महत्त्वके उपयोगका प्रभाव ही है।

वन्दना दो प्रकारकी होती है—(१) भाववंदना, (२) द्रव्यवंदना। उनमें से, "शुद्ध ज्ञानानन्दघनस्वभाव मैं हूँ" इस प्रकारकी सुदृढ़ प्रतीतिसे रागद्वेषकी वृत्तियोंको भूलकर विरागता जैसे रहती हो उस प्रकार निज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्यमें स्थिर होनेको भाववन्दना कहते हैं और निर्दोष सर्वज्ञ परम देवाधिदेवके सम्यक् स्वरूपके लक्ष्यकी विधिसे समयसारमें अवस्थित (स्वसमयपरिणत) महनीय अर्थात् पूज्य आत्माओंके सन्मानकी वृत्ति होनेको द्रव्यवंदना कहते हैं।

जीवो हि स्वजीवहितस्पृहः पूर्णहितस्पृहश्च भवति परन्तु कश्चिद्रागादिविभावान् हितं मन्येत स खलु सर्वं पूर्णं रागं वाञ्छति, यश्च किल ज्ञानी स निर्दोषज्ञायकभावं हितं-श्रद्दधाति ततः स यदि वाञ्छति चेत्पूर्णशुद्धदशामेवाङ्गी-करोति। एतदेव कारणं यदत्र पूर्णसिद्धशुद्धदशासमवेताः सिद्धाः श्रीमत्कुंदकुंदार्येण स्वस्मिन् स्थापिता न तु पुण्य-पापादिविकारभावाः अपूर्णशुद्धावस्थावच्छिन्ना वा दशा।

निश्चयतः जीव निज जीवके हितकी स्पृहा करने वाला होता है और पूर्ण हितकी स्पृहा करने वाला होता है, परन्तु कोई जीव रागादि विभावोंको ही हित माने तो वह समस्त पूर्ण रागको चाहता है और जो ज्ञानी ही है वह निर्दोष ज्ञायकभावको ही हितरूप श्रद्धा करता है। इस कारण यदि ज्ञानी कुछ चाहता है तो पूर्ण शुद्ध दशाको ही स्वीकार करता है। यही कारण है कि यहाँ पूर्ण शुद्ध दशामय सिद्ध भगवानको ही श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य ने आत्मामें स्थापित किया है किन्तु पुण्य-पाप आदि विकारभावोंको व अपूर्ण शुद्ध अवस्थामय पर्यायोंको स्थापित नहीं किया है।

यतो हि ते सिद्धाः सिद्धत्वेन साध्यानां स्वात्मनां प्रति-च्छंदस्थानीयास्ततस्तेषां वंदना भक्तिः सन्मानवृत्तिः स्थापना भव्यात्मनां सुरुचिकरा प्राकृतैव। प्रतिच्छंदो हि आदर्शः, उदाहरणं प्रतिध्वनिर्वा। सिद्धः प्रभुरित्थंभूतो हि विलक्षणः स्वलक्षण आदर्शः समस्ति यत्तद्द्रष्टा कस्मिंश्चित्पर्याये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुठत्यपि न तं पश्यति परं परं शुद्धं त्रैकालिकावच्छिन्न-चैतन्यानुरूपं स्वं पश्यति। अपरं च,यथा केनापि निज-मास्यं न दृष्टं तथापि दर्पणस्थस्वमुखाकारप्रतिविम्बं दृष्ट्वा स्वमुखं प्रत्येत्येव तथा सिद्धस्वरूपपरलक्ष्यमुखेन ज्ञानी स्वं प्रत्येति एकत्वविभक्तस्वरूपम्। यत्तत्र वर्तते तन्मयि मे वा, यत्तत्र न वर्तते न तन्मयि न मे वेति।

चूंकि वे सिद्ध भगवान सिद्धपनेसे साध्य निज आत्माओंको प्रतिच्छन्दस्वरूप हैं इस कारण उनकी वंदना, भक्ति, सन्मानवृत्ति, स्थापना करना, भव्य आत्माओंको सुरुचिकर होना स्वाभाविक ही है।

प्रतिच्छन्द नाम आदर्शका, उदाहरणका अथवा प्रतिध्वनिका है।

सिद्ध प्रभु इस प्रकारका विलक्षण और निजत्वक्षणस्वरूप आदर्श हैं कि उस आदर्श सिद्ध प्रभुका द्रष्टा किसी भी पर्यायके लोटने (होने) पर भी उस पर्यायको नहीं देखता है किन्तु परम शुद्ध त्रैकालिक भावमय अपनेको देखता है।

और भी, जैसे किसी ने भी अपना मुख नहीं देखा तो भी दर्पणमें स्थित अपने मुखके आकाररूप प्रतिविम्बको देखकर अपना मुख जैसा है वैसी ही अपने मुखकी श्रद्धा करता ही है। उसी प्रकार सिद्धस्वरूप पर आत्मतत्त्वके लक्ष्यके मार्फत ज्ञानी एकत्वमय परविभक्त निज आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करता है—जो तत्त्व सिद्धोंमें है वह तत्त्व मुझमें है व मेरा है और जो तत्त्व सिद्धोंमें नहीं है वह तत्त्व मुझमें नहीं है व मेरा नहीं है।

उदाहरणं च-कस्यचिन्मुमुक्षोस्तर्के समुपस्थिते यत्कावस्था मे परा हितरूपा साध्या च, नन्वयं "सिद्ध" उदाहरणं दृष्टान्त-प्रदर्शनरूपः समस्ति यदित्थंभूतावस्था परा हितरूपा साध्या च।

उदाहरण :—किसी मुमुक्षु पुरुषके तर्क उपस्थित होने पर कि कौनसी मेरी अवस्था उत्कृष्ट है, हितरूप है और साध्यरूप है तो उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये यह सिद्ध उदाहरण है, दृष्टान्त—प्रदर्शनरूप है कि ऐसी अवस्था उत्कृष्ट है, हितरूप है और साध्य है।

प्रतिध्वनिर्वा-यथा-स्वहितमभिलिप्सुः कश्चित्प्रत्यासन्ननिष्ठो भव्यात्मा सिद्धांस्तौति—हे भगवंस्त्वं ज्ञानानंदस्वरूपः पूर्णोसि तदा ततोपि प्रतिध्वनिरिवान्तर्ध्वनिर्भवति यत्त्वमपि ज्ञानानंदस्वरूपः पूर्णोसि, निरीक्ष निरीक्ष।

प्रतिध्वनि :—जैसे अपना हित चाहनेवाला कोई निकटश्रद्धावान भव्य आत्मा सिद्धोंका स्तवन करता है कि—हे भगवन्! तुम ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्ण हो तो उस समय वहाँसे प्रतिध्वनिकी तरह अन्तर्ध्वनि होती है कि तुम भी ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्ण हो, देखो, अन्तरङ्गमें देखो।

अथैवं वंदित्तु सव्वसिद्धे इति व्याख्याय सिद्धगतेर्ध्रुवत्वमचलत्वमनुपमत्वं तद्विपरीतत्वं च तिर्यङ्नरकमनुष्यदेवगतीनां लदयते। धर्मार्थकामरूपत्रिवर्गेभ्य उत्तीर्णत्वादपवर्गस्थितिनाम्नी संसरणरूपनरकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिभ्यश्चतुर्भ्यं अपगतत्वात्पंचमगतिनाम्नी जन्ममरणातीतत्वान्निर्वाणदशाह्वा सकलद्रव्यभावकर्मनोकर्मभ्यो मुक्तत्वान्मुक्त्यवस्थारूपा स्वात्मोपलब्धिलक्षणा सिद्धगतिर्हि ध्रुवा असिद्धत्वभावनिमित्तीभूतसकलकर्मकलङ्कानां निःशेषतया क्षयात्। न हि तेषां क्षयेपि कदाचित्पुनस्तेषां संसर्गः संभाव्यः कर्मबंधनिमित्तीभूतरागद्वेषमोहभावानामत्यन्ताभावात्। तिर्यगादिगतयस्तु पूर्वबद्धोदितकर्मोपाधिसान्निध्यभवा निमित्तभवाः स्वभावविलक्षणत्वान्नानाविभावफलत्वादध्रुवाः।

इस प्रकार "वंदित्तु सव्वसिद्धे" इन पदोंकी व्याख्या करके सिद्धगतिकी ध्रुवता, अचलता व अनुपमताका एवं तिर्यञ्च नारक मनुष्य देव गतिकी उससे विपरीतता अर्थात् अध्रुवता, चलता व उपमितताका निरूपण करते हैं अथवा दृष्टिमें रखते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म (पुण्य) अर्थ काम रूप तीन वर्गोंसे उत्तीर्ण (पार) होनेके कारण अपवर्गस्थितिनामक, संसरणरूप नरक तिर्यञ्च मनुष्य देवगति इन चारों गतियोंसे रहित हो जानेके कारण पञ्चमगति नामसे प्रसिद्ध, जन्ममरणसे अतीत हो जानेके कारण निर्वाणदशानामक तथा समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे मुक्त हो जानेके कारण मुक्तिअवस्थारूप जो स्वात्मोपलब्धिलक्षणक सिद्धगति है वह नियमसे ध्रुव ही है, क्योंकि असिद्धत्वभावके निमित्तभूत जो समस्त कर्म कलङ्क हैं उनका पूर्णरूपसे बिलकुल क्षय हो चुका है। उन कर्मकलङ्कोंका संसर्ग (सम्बन्ध) सम्भव नहीं है, क्योंकि कर्मकलङ्कके बन्धनके निमित्तीभूत रागद्वेष मोहभावोंका वहाँ अत्यन्त अभाव है। इस तरह सिद्धगति याने गतिरहित अवस्था तो ध्रुव है, परन्तु नरक तिर्यञ्च आदिक चारों गतियाँ जो कि पूर्वबद्ध व उदित कर्मोपाधि के सान्निध्यमें होती है वे स्वभावसे विलक्षण अथवा विपरीत होनेके कारण विभावके फल अथवा विभाव फलवाले होनेके कारण अध्रुव हैं।

तथा चेयमचला—आत्मनोपदत्वाच्चलानां द्रव्यान्तरभावानां नैरन्तर्यपरिवृत्तीनामत्यन्तशान्तेः स्वस्वरूपनिश्चलत्वात्। तिर्यगादयस्तु तद्विरुद्धत्वाच्चलाः। अनुपमा च तावत्तदतिरिक्तसकलोपमेयानामर्थाणां तदंशसादृश्यमपि धर्तुमशक्यत्वात्। तिर्यगादस्त्वत्र अनादिकर्मतन्त्रत्वेन सुलभत्वाद्दृष्टत्वाद्भुक्तत्वाच्चोपमावच्छिन्नाः। तदेवं ध्रुवाम चलामनुपमां गतिं प्राप्तान् सर्वसिद्धान् वंदित्वा कुंदकुंदार्यदेवः प्रभाषते यदहमहो इदं श्रुतकेवलिभणितं समयप्राभृतं वक्ष्यामि अहो भव्याः? भव्यानामेव भाषणतात्पर्यसाफल्याधिकारित्वात्। अथवा सर्वे सम्बोधिताः समुपदेशने महतामपेक्षापरिहारात्। अतः यन्न कदाचिदपि रुच्याश्रुतं धृतं वा तद्भापणप्रयत्नवेलायां तत्त्वमधिगन्तुकामानामा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्चर्यकारकत्वं ग्रन्थकर्तुः प्रहर्षत्व चाहो शब्दोनुभाषते ।

तथा च यह सिद्धगति अचल है, क्योंकि आत्माके स्थानभूत (पद) न होनेके कारण चल विचल रहनेवाले और जिनका कि निरन्तर परिवर्तन होता रहता है ऐसे द्रव्यान्तरभाव (अन्य द्रव्योंके निमित्तसे होनेवाले वे भाव) हैं अर्थात् विभाव भाव हैं उनकी अत्यन्त शान्ति हो गई है अर्थात् समाप्ति (विनाश) हो गई है, और इसी कारण सिद्ध भगवान अपने स्वरूपमें निश्चल हैं। अतः सिद्धगति अचल है। परन्तु ये तिर्यञ्च आदिक गतियां उससे विरुद्ध होनेसे अथवा आत्मस्वभावसे विरुद्ध होनेके कारण चल हैं।

सिद्ध भगवंतके सिवाय शेष समस्त उपमेय अर्थ सिद्ध भगवानकी अंशमात्र भी सद्दृशताको धारण नहीं कर सकते हैं, इस कारण सिद्धगति अनुपम है। परन्तु ये यहाँ सब तिर्यञ्च आदिक गतियाँ अनादिकालसे कर्मकी आधीनता होनेके कारण सुलभ है, दृष्ट है और भुक्त है (भोगी हुई हैं), इस कारण उपमासहित हे।

इस प्रकार ध्रुव अचल अनुपम गतिको प्राप्त समस्त सिद्धोंको नमस्कार करके श्रीमत्कुन्दकुन्द आचार्यदेव कहते हैं कि अहो भव्य जीवो ! यह में श्रुतकेवली द्वारा कथित (प्रकाशित) इस समयप्राभृतको कहूंगा। यहां आचार्यदेवने भव्य जीवोंको सम्वोधा है, क्योंकि भव्य जीवोंके ही भाषणके तत्परताकी सफलताका अधिकार है। अथवा सब जीव संवोधे गये हैं, क्योंकि हितकारी उपदेशके कार्यमें महापुरुषोंके अपेक्षावृत्तिका परिहार रहता हैं। इस कारण जो तत्त्व कभी भी रुचिपूर्वक नहीं सुना व नहीं धारण किया उस तत्त्वके उपदेशके समय तत्त्वजिज्ञासुवोंके तो आश्चर्यकारकताको और ग्रन्थकर्ताके प्रकृष्ट हर्षपनेको यह अहो शब्द प्रकट करता है।

इदं वक्ष्यमाणसकलाध्यात्मसाराणां ज्ञानगतत्वात्प्रत्यक्षीभूतं श्रुतकेवलिभणितं श्रुते ह्यार्हतपरमागमे सकलसंविद्भिः केवलिभिर्भणितं सर्वं द्वादशांगमंगवाह्यं च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतं जानद्भिः श्रुतकेवलिभिर्वा भणितं वानादिपारम्पर्यप्रकाशितं समयप्राभृतं वक्ष्यामि ।

आगे कहे जानेवाले समस्त अध्यात्मसारोंके ज्ञानगत होनेके कारण प्रत्यक्षीभूत इस समयप्राभृतको कहूंगा जो कि श्रुतकेवलिभणित है अर्थात श्रुतोंमें माने आर्हत परभागममें सर्वज्ञ केवली भगवंतों द्वारा भणित अथवा समस्त द्वादशाङ्ग और अङ्गबाह्य श्रुतके ज्ञाता श्रुतकेवलियों द्वारा भणित है तथा अनादि परम्परासे प्रकाशित है ।

समयप्राभृतं––समः सदृशः अयः वोधः समयः अथवा संगतः सर्वज्ञानेष्वनुगतः अयः प्रतिभासः समयः अथवा सम्यक् प्रमणान्तराविसंवादित्वेन ईयते परिच्छिद्यते समयः स एव तस्य सारः समयसारस्तस्य प्राभृतम् पदस्फुटं पदैः प्रकाशनमित्यर्थः ।

समयप्राभृत :—सम अर्थात् सदृश, अय अर्थात् बोधको समय कहते हैं अथवा संगत याने सर्व ज्ञानव्यक्तियोंमें अनुगत अय अर्थात् प्रतिभासको समय कहते हैं अथवा सम्यक् याने प्रमाणान्तरोंके अविरोधरूपसे ईयते अर्थात् जो जाना जाता है उसे समय करते हैं । वह समय ही उसका सार है वही समयसार है उसका यह प्राभृत है अर्थात् पदस्फुट याने पदोंके द्वारा प्रकाशन है । यह समयप्राभृत शब्दका तात्पर्य है ।

पाहुडं––पदस्फुटम् इत्यवस्थायां "कीरइ पयाण काणवि आई मज्झंतवण्णसरलोवो" इति गाथया दकारस्य लोपे पस्फुटं, पुनः "एए छच्चा समणा' इत्यादिगाथया पकारस्याकारे दीर्घे कृते पास्फुटं, पुनः "दीसंति दोण्णि वण्णा संजुत्ता अहव तिण्णि चत्तारि । ताणं दुव्वललोवे काऊण कमो पओत्तव्वो" इति गाथया सकारस्य लोपे कृते पाफुटं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पहुड" की संस्कृतछाया पदस्फुट है अथवा पदस्फुटं शब्दसे पाहुडं शब्दकी सिद्धि करना। पदस्फुटं इस अवस्थामें "कीरइ पयाण काणवि आईमज्झंतवण्णसरलोवो" इस गाथासूत्रसे दकारका लोप होनेपर "पस्फुटं" बन गया। फिर "एए छच्च समाणा" इत्यादि गाथासूत्रसे पकारवर्ती अकारके दीर्घ कर दिये जानेपर "पास्फुटं" हो गया। फिर "दीसंति दोण्णि वण्णा संजुत्ता अहव तिण्णि चत्तारि। ताणं सुव्वल-लोवे काऊण कमो पओत्तव्वो" इस गाथासूत्रसे सकारका लोप कर देने-पर "पाफुटं" बन गया।

पाफुटं इत्यत्र "वग्गे वग्गे आई अवट्ठिया दोण्णि दोण्णि जे वण्णा, ते णियय णियय वग्गे तइ अत्तणयं उवणमंति" इति गाथया फकारस्य स्थाने भकारे कृते टकारस्य च डकारे कृते पाभुडं पुनः "खघभसा उण हत्तं इति भकारस्य स्थाने हकारे कृते पाहुडमिति साधु।

"पाफुटं" ऐसी अवस्थामें वग्गे वग्गे आई अवट्ठिया दोण्णि जे वण्णा, ते णियय णियय वग्गो तइ अत्तणयं उवणमंति" इस गाथासूत्रसे फकारके स्थानमें भकार आदेश करनेपर और टकारके स्थानमें डकार आदेश करनेपर "पाभुडं" शब्द बन गया। फिर "खघभसा उण हत्तं" इससे भकारके स्थानमें हकार कर देनेपर "पाहुड" यह शब्द सिद्ध हो गया।

अथवा प्राभृतं उपहारः—समयतत्त्वमधिगन्तुकामानां समयसारदेवदर्शनायायमुपहारः समयप्राभृतं शास्त्रम् समस्ति।

अथवा प्राभृत नाम उपहारका है :—समय तत्त्वको प्राप्त करनेके इच्छुकोंका समयसारदेवके दर्शन करनेके लिये यह समयप्राभृत शास्त्र उपहार है।

भावार्थ-जैसे कोई राजाके दर्शन करनेकी इच्छा करनेवाला राजाके दर्शन करनके लिये उपहार आगे रखकर दर्शन करता है। इसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव्य जीव समयसार राजाके उपहाररूप इस समयप्राभृत शास्त्रको आगे भेंट कर व उपहार कर अथवा उपयोग करके समयसार तत्त्वके दर्शन कर लेता है।

अथवा प्राभृतं सारः समयस्य स्वात्मनः शुद्धावस्था समयसारः।

अथवा प्राभृत नाम सारका है समय याने निज आत्माका सार याने शुद्ध अवस्था समयसार है।

अथ पदसार्थक्यं प्रदर्श्यते—वंदित्तु इति पदन्यासः पूज्यपादः स्वलक्ष्यवैशद्याय श्रद्धानतैः सद्भिर्विहितः। ननु नमस्कारस्य किं प्रयोजनम्? अत्र चाध्यात्मग्रन्थत्वात्परलक्ष्यीकरणस्याप्रयोजकत्वं प्रतीयत एवेतिचेन्न मुमुक्षूणां प्रागुदाहरणेन दृष्टिवैशद्योपपत्तेः श्रद्धालोः स्वेष्टसन्मानं विनैतादृशग्रन्थराजनिर्माणाप्रवृत्तेः वन्दनाभिधानस्य प्रयोजनवत्त्वात्।

वंदित्तु इस पद का न्यास पूज्यपाद श्रद्धावनत आचार्यदेवने अपने लक्ष्यकी निर्मलताके लिये किया है। प्रश्न—नमस्कारका क्या प्रयोजन है? यहाँ तो अध्यात्मग्रंथ होनेके कारण परपदार्थका लक्ष्य करना तो प्रयोजक (प्रयोजन सिद्ध कर सकनेवाला) है ही नहीं। उत्तर:—ऐसा नहीं है, क्योंकि (१) पहिले उदाहरण (प्रतिच्छन्द) सामने आनेसे मुमुक्षुओंकी दृष्टिमें निर्मलता उत्पन्न होती है, (२) अपने इष्टदेवका सन्मान किये बिना श्रद्धालु पुरुषकी ऐसे ग्रंथराजके निर्माणमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः वन्दना करना व वन्दना शब्द रखना प्रयोजनवान है।

सव्वसिद्धे—इत्यत्र सर्वशब्दप्रयोगः शुद्धात्मक एवेति निराकरणार्थं, यावन्तो जीवा भेदविज्ञानबलेन स्वात्मदृष्टिं प्राप्य स्वात्मनि स्थिरीभूय निर्विकल्पाः सन्तो निर्मला जाता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तावन्त एव सिद्धाः। ननु सिद्धे इति बहुवचनप्रयोगेणैव सिद्धानामनेकत्वं सिद्धं पुनः सर्वशब्दः किमर्थमापतितमिति चेदुच्यते-सिद्धानिति बहुवचनप्रयोगेणैतदेव सेत्स्यति यत्तेनेकाः पुनः सर्वशब्दप्रयोगेणतत्सिद्धं भवति यत्तेनंताः, अन्यथासर्वशब्दस्य निरर्थकत्वं स्यात्। अथवा सिद्धसिद्ध्यमानसेत्स्यमानानां सर्वेषां ग्रहणं स्यादतः सर्वशब्दविधानम्।

सव्वसिद्धे—इसमें सर्व शब्दका प्रयोग शुद्ध आत्मा एक ही है इस आशयका निराकरण करनेके लिये किया गया है। जितने भी जीव भेदविज्ञानके बलसे निज आत्मतत्त्वकी दृष्टिको पाकर स्वात्मामें स्थिर होकर निर्विकल्प होते हुए निर्मल हो जाते हैं उतने ही सिद्ध भगवंत हैं। प्रश्न—सिद्धे इस प्रकारके बहुवचनके प्रयोगसे सिद्धोंकी अनेकता अर्थात् सिद्ध अनेक हैं यह बात सिद्ध हो जाती है फिर सर्व (सव्व) शब्द इस गाथामें किस लिए डाला गया है? उत्तरः—सिद्धान् (सिद्धे) इस बहुवचनके प्रयोगसे तो इतना ही सिद्ध होगा कि वे सिद्ध अनेक हैं फिर सर्व शब्दका जो प्रयोग किया है उससे यह सिद्ध होता है कि वे सिद्ध अनन्त हैं, अन्यथा सर्व शब्द निरर्थक हो जावेगा। अथवा जो सिद्ध हो चुके हैं व सिद्ध हो रहे हैं व सिद्ध होंगे सबोंका ग्रहण हो जावे इसलिए सर्व शब्द यहाँ दिया गया है।

अथ गतिविशेषणान्युच्यते—ध्रुवां-ध्रुवते नैरन्तर्येणावतिष्ठते इति ध्रुवा तां स्वाभाविकपरिणतित्वेन शाश्वतप्रवहमानाम्, अचलां न चलतीत्यचला तां स्वभावविकासाच्युतां, अनुपमां-उप समीपे मात्यनयेत्युपमा न विद्यते उपमा यस्याः सानुपमा तां सांसारिकसर्वपदेभ्योत्यंतविलक्षणां सर्वोत्कृष्टाम्।

अब गतिके विशेषणोंको कहते हैं—ध्रुवां ध्रुवते नैरन्तर्येण अवतिष्ठते अर्थात् जो निरन्तर याने बराबर (अन्तररहित) रहा करे उसे ध्रुव कहते हैं। सिद्ध भगवान ध्रुव गतिको प्राप्त हैं। कैसी है यह ध्रुव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गति ? स्वाभाविक परिणति होनेसे सदाकाल वर्तनेवाली है। अचलां-न चलति इति अचला अर्थात् जो चलायमान न हो उसे अचला कहते हैं। सिद्ध भगवान अचला गतिको प्राप्त हैं। कैसी है यह अचला गति ? जो यह स्वाभाविक विकाससे च्युत कभी भी नहीं हो सकती। अनुपमां—उप समीपे माति अनया इति उपमा अर्थात् बुद्धिमान पुरुष जिसके द्वारा समीपमें माप कर लेता है उसे उपमा कहते हैं और जिसकी उपमा न हो उसे अनुपमा कहते हैं। अनुपमा गतिका तात्पर्य है कि ऐसी गति जो सांसारिक सर्व पदोंसे अत्यन्त विलक्षण है सर्वोत्कृष्ट है। ऐसी अनुपमा गतिको प्राप्त सिद्ध भगवान हैं।

गइं—गतिं यतो हि पूर्वदशाभ्यो विलक्षणावस्था ततः गतिरेव किन्तु सा संसारविरहितैव।

गइं—गतिको। चूंकि पूर्वदशाओंसे विलक्षण अवस्था यह निर्वाण अवस्था है इसलिए यह भी गति है परन्तु वास्तवमें तो वह गतिरहित ही है। याने संसार अवस्थासे विरहित ही है।

पत्ते—शक्तिरूपेण सिद्धत्वस्य व्यक्तिकाले प्राप्तशब्दस्य सार्थकत्वात् प्राप्तानिति साधु। शेषशब्दानां सार्थक्यं वाचनायां दृष्टव्यम्।

पत्ते—शक्तिरूपसे रहनेवाली सिद्धपनाकी जब व्यक्ति हुई, परिणति हुई उस कालमें सिद्धपनेको प्राप्त किया ऐसा प्राप्त शब्द कहना सार्थक ही है।

शेष शब्दोंकी सार्थकता पहिले कही हुई वाचनामें देख लेना चाहिए।

सर्वतात्पर्यम्. हि—अहं (कुंदकुंददेवः) ध्रुवामचलामनुपमां गतिं प्राप्तान् सर्वसिद्धान् वंदित्वा इदं श्रुतकेवलिभणितं श्रुतपरम्परागतं न तु केवलं स्वबुद्धिकल्पितं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत एव च प्रमाणीभूतं समयप्राभृतं शास्त्रं स्वस्य परेषां च संसारसंततिच्छेदायान्तर्द्रव्यवचोभिर्वक्ष्यामि ।

समस्त पदोंका तात्पर्य यह है—मैं (कुन्द कुन्द देव) ध्रुव, अचल, अनुपम गतिको प्राप्त सर्व सिद्धोंको वन्दना करके इस समयप्राभृतशास्त्र को, जो कि केवल स्वबुद्धिकल्पित नहीं है किन्तु श्रुतकेवलीद्वारा कथित है, श्रुतकी परम्परासे आगत है अतएव च प्रमाणीभूत है, ऐसे इस समयप्राभृत शास्त्रको अपनी व दूसरों की संसारसंततिके छेदके लिए अन्तर्जल व द्रव्यवचनोंके द्वारा कहूँगा ।

अथ को हि नाम समय इति पृष्ट इवार्यो यतो हि पराश्रितं सुखाभासं भवक्लेशं वीभत्सु मन्यमानाः कोहं कीदृग्गुणो मे च किं स्वाधीनं सुखं किं हितमित्याकांक्षिण एव प्रतिवोध्यास्ततो जिज्ञासून् परिभाषते ।

अब समय नाम किसका है मानों इस कार पूँछे गये आचार्यदेव जिज्ञासुओंको परिभाषण करते हैं। क्योंकि, पराधीन सुखाभास संसार का क्लेशरूप ही है भयानक ही है ऐसा मानते हुए जो पुरुष मैं कौन हूँ कैसे गुणवाला हूँ मेरा स्वाधीन सुख क्या है मेरा हित क्या है इस प्रकार जाननेकी जिनके अकांक्षा है वे ही जिज्ञासु पुरुष समझने के योग्य हैं।

अथवोदात्तचित्तानां प्रवृत्तेः सार्वत्वान्मोहिनो जिज्ञासवः स्युर्जिज्ञासवश्च ज्ञानिनः स्युर्ज्ञानिनो वा स्वनिश्चलाः स्युरिति सर्वानेव प्रत्याह—

अथवा उत्कृष्ट चित्तवालोंकी प्रवृत्ति सर्वजीवोंके हितको करनेके लिए होती है सो मोही पुरुष तो जिज्ञासु बनें व जिज्ञासु पुरुष ज्ञानी बनें और ज्ञानी पुरुष स्वात्मामें निश्चल होवें इस प्रयोजनसे सब जीवों के प्रति श्री कुन्दकुन्द देव कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवो चरित्तदंसणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

अस्मीतिप्रत्ययविषयत्वादसत्यर्थक्रियाभावात्सत्त्वमापद्यमानः सकलवक्तृकल्पनाविषयाणां तत्त्वप्रतिनियमायोगत्वेन स्वेष्टोपादानपरापोहनसंपन्नत्वाच्छक्तीनां वसतेराधारस्यावश्यंभावित्वाद्वस्तुत्वं प्रपन्नोत्पयोत्पादध्रौव्यलक्षणतद्भावानुस्यूतद्रव्यत्वावच्छिन्नः सकलगुणानां स्वस्वरूपव्यवस्थितत्वेनासंकरतानुपपत्तेरगुरूलघुत्वयोगी सतो वस्तुनो द्रव्यस्य गुणपुञ्जस्य प्रदेशानाधारतयानवस्थितेः प्रदेशवत्वविशिष्टः प्रमेयत्वाभावे दृश्यमानसफलव्यवहारक्रियोच्छेदप्रसक्तेः प्रमाणगोचरत्वाच्च प्रमेयः पुद्गलधर्माधर्माकाशकालासाधारणचिद्रूपतास्वभावसद्भावात्सच्चिदानंदमयोयं जीवनामा पदार्थविशेषः स सर्वेष्वयेषु संगतत्वात्समय इत्यभिधीयते स किल शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावस्वभावनिश्चयप्राणेन तथा चाशुद्धनिश्चयनयेन क्षायोपशमिकज्ञानदर्शनरूपभावप्राणेन तथैवासद्भूतव्यवहारनयेन यथासंभवदिन्द्रियबलायुरुच्छ्वासप्राणर्जीवति जीविष्यति जीवितो वा जीवः। तत्र द्रव्यस्वभावानुसारिव्यक्तोदयशुद्धचैतन्यसमुत्पादकभेदविज्ञानोदयात्समस्तद्रव्यान्तरभावात्प्रच्युत्य पुण्यपापशुभाशुभविकल्पशून्यशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मप्रतीतिसंवेदनानुभूतिलक्षणदर्शनज्ञानचारित्र-रूपात्मतत्त्वस्थितत्वेन स्वोन्मुखः स्वसमयः। यश्चानाद्यविद्याप्रवर्तमानमोहवशवर्तितया कर्मनोकर्मादिवाह्यनिमित्ता एव रागद्वेषौ सुखासुखौ कुर्वन्तीति बुद्ध्या निजपरमात्मप्रतीतिसंवेदनानुभूतिरूपात्मकत्त्वात्प्रच्युत्य कर्मप्रत्ययनोकर्माश्रयजदर्शनचारित्रविकारस्वरूपमोहरागद्वेषादिभावैकगतः परसमयः।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जीवनामक पदार्थविशेष समय कहलाता है। समय शब्दका अर्थ है—सर्वेषु अर्येषु संगतः समयः अर्थात् जो समस्त ज्ञानव्यक्तियोंमें संगत हो, निरन्तर प्राप्त हो उसे समय कहते हैं। इस समयनामक जीवपदार्थकी विशेषताको कहते हैं—

यह समय (जीव) सत् है अर्थात् अस्तित्वगुण सहित है क्योंकि यह "अस्ति" इस प्रत्ययका (अवगमका) विषय है तथा यदि यह सत् न होता तो इसमें किसीभी प्रकारकी अर्थक्रिया (परिणति) हो ही नहीं सकती थी अर्थात् असत्में अर्थक्रिया नहीं हुआ करती, किन्तु इस आत्मामें अर्थक्रिया (परिणति) हो ही रही है इस कारण यह समय-नामक पदार्थ सत् है। सब वक्तादिक लोग अपनी कल्पनामें जिसे भी आत्मा मान लें वह आत्मतत्त्व हो जाय ऐसा नियम तो नहीं हो सकता इस कारण जो अपने इष्टके उपादान और परके अपोहनसे सम्पन्न हो अथवा जो आत्माके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे हो और पर पदार्थके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे न हो उसे आत्मा वस्तु कहते हैं अथवा जो शक्तियोंकी वसति अर्थात् रहनेका आधार हो उसे वस्तु कहते हैं आत्मा अपनी शक्तियोंके वसनेका आधार है अतः आत्मा वस्तु है अर्थात् आत्मा वस्तुत्वगुणसहित है। यह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप सत्त्वसे अनुस्यूत द्रव्यत्व गुणसे सहित है अतः आत्मा द्रव्य है। समस्त गुण अपने अपने स्वरूपमें ही व्यवस्थित होते हैं सबसे एक पदार्थकी दूसरे पदार्थमें संकरता नहीं हो सकती इस कारण आत्मा अगुरुलघुत्वसहित है। सत्, वस्तु, द्रव्य, गुणपुञ्ज आत्मा प्रदेशके आधार बिना नहीं रह सकता अतः आत्मा प्रदेशवत्त्व गुणसहित है। आत्माके प्रमेयपनेके अभावमें दृश्यमान समस्त व्यवहार क्रियाओंका उच्छेद होनेका प्रसंग आजायगा अतः तथा आत्मा प्रमाणका विषयभूत है अतः आत्मा प्रमेय है। पुद्गल, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योंमें जो असाधारण चैतन्यस्वभावका सद्भाव न होनेसे सच्चिदानन्दमय यह जीवनामक पदार्थविशेष है वह समस्त अर्थोंमें संगत होनेसे समय ऐसा कहा जाता है। वह शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धटंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावरूप निश्चयप्राणके द्वारा तथा अशुद्धनिश्चयनयसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षायोपशमिक ज्ञान दर्शनरूप भावप्राणके द्वारा तथैव असद्भूतव्यवहार-नयसे यथासंभव इन्द्रिय, बल, आयुउच्छ्वासरूप भावप्राणोंके द्वारा जो जीवित है, जीवित रहेगा, जीवित हुआ था वह जीव है।

उनमें से द्रव्यस्वभावके अनुसारी व्यक्त है उदय जिसका ऐसे शुद्ध चैतन्यके समुत्पादक भेदविज्ञानके उदय होनेसे समस्त द्रव्यान्तरभावोंसे च्युत होकर पुण्य पाप शुभ अशुभ सर्व विकल्पोंसे शून्य व शुद्ध दर्शनज्ञान स्वभाववाले निज परमात्मतत्त्वकी प्रतीति, संवेदन, अनुभूतिस्वरूप दर्शनज्ञानचारित्रमय आत्मतत्त्वमें स्थित होनेसे जो स्वआत्मतत्त्वके उन्मुख है उसे स्वसमय कहते हैं। और, जो अनादि अविद्याके कारण प्रवर्तमान मोहभावके वशवर्ती होनेके कारण "कर्म नोकर्म आदि बाह्य निमित्त ही राजद्वेष दुःखोंको करते हैं" इस वुद्धिसे निज परमात्मतत्त्वकी प्रतीति संवेदन, अनुभूतिरूप आत्मतत्त्वसे च्युत होकर कर्मका निमित्त पाकर और नोकर्मका आश्रय पाकर उत्पन्न होनेवाले दर्शन चारित्रके विकार स्वरूप मोह राग द्वे आदिभावमें ही एकपनेको प्राप्त है वह परसमय कहलाता है।

समयस्यात्मनः स्वपरसमयदशाव्यतिरिक्तत्वेनासत्त्वादुभयावस्थयोरुपलभ्यमानः समयः अथवा समयस्य न केवलं शुद्धावस्थामात्रत्वं न चाशुद्धावस्थामात्रत्वं किन्त्वनाद्यनतोकिमेकस्वरूपी निजसकलपर्यायव्यापकश्चेतनो द्रव्यविशेषस्तस्य स्वपरसमयाह्वयोर्द्वयोरवस्थयोरतिरिक्तत्वेनानुपलब्धेः स्वसमय-परसमयव्याख्यानेनैव श्रीमत्कुंदकुंदाचार्येण समयस्वरूपो गर्भीकृतः। अशुद्धदशा हि तावदनादिजस्त्रकल्पनोद्भूतरागद्वेषमया संसारावस्था, शुद्धदशा च परभिन्ननिजशुद्धस्वरूपं प्रतीत्य स्वरूपनिश्चलता, तयोरुभयोश्च स्वभावदृष्टया शुद्धता वर्तत एत्रान्यथा शुद्धप्रतीत्यवलम्वनाश्रयाभावात्सम्यक्त्वस्यैवानुपपत्तेः सकलकल्याणोपायसरणी विडम्बनैव स्यात् संसारक्लेशमुक्तेर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावाच्चाशुद्धतास्वभावप्रसक्तेः स्वतंत्रस्वरूपाभावात्तत्त्वोपप्लवः सर्वसंकरश्च स्यात् ।

समय अर्थात् आत्मा स्वसमय और परसमय दोनों दशावोंको छोड़कर अन्यत्र नही पाया जाता इस कारण दोनों अवस्थावोंमें पाया जाने वाला जो एक है वह समय है। अथवा, समय (आत्मा) न केवल शुद्ध अवस्थामात्र है और न केवल अशुद्ध अवस्थामात्र है, किन्तु अनाद्यनन्त, किसीभी एक दशास्वरूप नहीं, अपनी समस्त परिणतियोंमें व्यापक चेतन द्रव्यविशेष है वह स्वसमय व परसमय दोनों अवस्थावोंको छोड़कर नहीं पाया जाता है अतः स्वसमय व परसमय के व्याख्यानसे ही श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यने समयका स्वरूप गर्भित कर दिया है।

अशुद्ध दशा तो अनादिसे हो रही अपनी कल्पनावोंसे उत्पन्न हुई रागद्वेषमयी संसार अवस्थाको कहते हैं और पर पदार्थोंसे भिन्न निज शूद्ध स्वरूपकी प्रतीति करके जो निज स्वरूपमें निश्चलता होती है उसे शुद्ध दशा कहते हैं।

उन दोनों ही अवस्थावोंमें स्वभावदृष्टिसे शुद्धता है अन्यथा अर्थात् अशुद्ध दशामें यदि द्रव्यशुद्धता न वर्तती हो तो शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति, अवलम्बन व आश्रय कर सकनेके अभावसे सम्यक्त्वकी ही उत्पत्ति नहीं हो सकती फिरतो समस्त कल्याणके उपायोंकी धारणा करना विडम्बना ही है। और फिर संसारके क्लेशोंकी मुक्तिका अभाव होनेसे, अशुद्धतास्वभावका प्रसङ्ग आनेसे तथा स्वतन्त्र स्वरूपका अभाव होनेसे तत्त्वका विनाश हो जायगा या सर्वसंकर हो जावेगा।

अथेयं पंचिका—

जीवो—शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकज्ञायकस्वभावनिश्चयप्राणेन तथैवाशुद्धनिश्चयनयेन क्षायोपशमिकाशुद्धभावप्राणैरसद्भूतव्यवहारापरनाम्नोपचारेण च यथासंभवत्पंचत्र्येकैकेन्द्रियवलायुरानपानद्रव्यप्राणैश्च जीवति जीविष्यत्यजीवद्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवः स किल द्रव्येण सर्वगुणधर्मपिण्डत्वेनायमिति निर्दिश्यमानत्वाज्जीवपदार्थः, क्षेत्रेणासंख्यातप्रदेशविस्तृतो देहाकारो जीवस्तिकायः, कालेन वर्तमाने वर्तमानपरिणतिरूपेण द्रवनादतीतानागतकालाभ्यां तत्तत्परिणत्यादुद्रुवद्द्रोष्यतीति व्यवहरणाज्जीवद्रव्यात्त्रो, भावेन चैतन्यस्वरूपत्वाज्जीवतत्त्वम्। जीवत्वं हि त्रैकालिकपर्यायेषु वर्तमानमपि न विपरिणमते, तस्य पर्याया उत्पद्यन्ते नश्यन्ति च। तत्किल त्रैकालिकमेकम् बालयुववृद्धावस्थासु वर्तमानं मनुष्यत्वमिवाज्ञानसाधकाशुद्धावस्थास्वपि वर्तमानमखण्डम्।

अब आगे यह पंचिका दिखाई जाती है अर्थात् पदों का निरुक्त्यर्थ व विवरण किया जाता है—

जीवो—शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिसे शुद्ध बुद्ध एक ज्ञायकस्वभावरूप निश्चयप्राणके द्वारा तथा अशुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक अशुद्ध भावप्राणोंके द्वारा तथा असद्भूत व्यवहार है दूसरा नाम जिसका ऐसे उपचारनयसे यथासंभव ५ इंद्रियप्राण, ३ वलप्राण, १ आयु १ श्वासोच्छ्वास इन दस प्राणोंके द्वारा जो जीता है जीवेगा अथवा जिया था उसे जीव ते हैं।

वह जीवनामक वस्तु द्रव्यकी अपेक्षासे सर्व गुण व ोंका पिण्ड रूप होनेसे, "यह है" इस प्रकार निर्दिश्यमान होनेसे जीवपदार्थ है। वह जीवनामक वस्तु क्षेत्रकी अपेक्षासे निजके असंख्यात प्रदेशोंमें विस्तृत है, देहाकार है अतः जीव अस्तिकाय है। वह जीवनामक वस्तु कालकी अपेक्षासे वर्तमानकालमें वर्तमान परिणति व है, (पर्यायरूपको प्राप्त होता है) अतीतकालमें अतीत उन उन परिणतियोंसे द्रवता था, भविष्यत्कालमें भविष्यत् उन उन परिणतियोंसे द्रवेगा इस प्रकार व्यवहरण होनेसे जीव द्रव्य है। वह जीवनामक वस्तु भावकी अपेक्षासे चैतन्यस्वरूप होनेके कारण जीवतत्त्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तवमें जीवत्वभाव जो है वह त्रिक : वर्तमान होकर भी परिवर्तित नहीं होता, उसकी पर्यायें उत्पन्न होतीं हैं। वह तो त्रैकालिक, एक, वाल युवा वृद्ध अवस्थाओंमें वर्तमान मनुष्यत्वकी तरह, अज्ञानसाधक अशुद्ध अवस्थाओंमें भी वर्तमान अखण्ड है।

चरित्तं—विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावनिजपरमात्मनि निश्चलानुभूतिरूपं स्वसमयप्रवृत्तिरूपं संकल्पविकल्पापरनाममोहक्षोभरहितनिर्विकारपरिणत्या भवनं चरित्रम् चैतन्यप्रकाशनमिति यावत्। नहि देहक्रियाकलापपुण्यपापवेशेषु चारित्रम्। वाह्यं तपोपि वाह्यसाधनमात्रत्वाद्वस्तुतश्चारित्रत्वं न विभर्ति किन्तु निष्कामातीन्द्रियज्ञानोपयोगत्वेनेच्छासहजनिरोधत्वाच्चैतन्यप्रतपनं तपस्तदेव चारित्रम्।

चरित्त—विशुद्ध दर्शनज्ञानस्वभावी निज परमात्मामें निश्चल अनुभूतिरूप, स्वसमयप्रवृत्तिरूप अथवा संकल्प विकल्प हैं दूसरे नाम जिनके ऐसे मोह व क्षोभसे रहित निर्विकार परिणतिस्वरूपसे होनेको चरित्र कहते हैं, जिसका तात्पर्य है शुद्ध चैतन्यका प्रकाशन अथवा शुद्ध विकास। चारित्र जो है वह देहकी क्रियाकाण्ड या पुण्यपापके वेशोंमें नहीं है। बाह्य तप भी वाह्यसाधनमात्र होनेसे वास्तवमें चरित्रपनेको धारण नहीं करता, किन्तु निष्काम अतीन्द्रिय ज्ञानोपयोगरूप होनेसे व इच्छाका सहज निरोध होने से चैतन्य भावमें ही तपना, रहना सो तप है और वह ही चरित्र है।

दंसण—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मनि स्वभावदृष्टया रुचिरूपं दर्शनमोहानंतानुबंध्युपशमक्षयक्षयोपशमजनिर्विकारपरिणमनं तत्त्वार्थश्रद्धानमयं परमार्थाप्तागममुनित्वश्रद्धानरूपं वा सम्यग्दर्शनम्। तन्मूलं हि भेदविज्ञानम्—अहं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किल स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्मि, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नास्मि, स्वयं स्वं करोमि, नान्यः स्वात्मानं करोति, न चाहमन्यं करोमि, तथैव च न वेदये इति तथा चाहं स्वतन्त्रः सहजज्ञान-दर्शनस्वभावः, क्रोधादिभावाश्चानित्याः कर्मविपाका इति भेद-विज्ञानेन विना स्वपरभावोपादानापोहनरुच्यभावात् ।यस्मिन् सति श्रद्धाप्रतीत्यादिज्ञानपर्यायाः रुचिस्वाचरणादिचारित्र-पर्यायाः भवन्ति तत्सम्यग्दर्शनं परम ह्लादगर्भमिति दिक् ।

दंसणः—विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज परमात्मामें स्वभावदृष्टिसे जो रुचिरूप है अथवा दर्शनमोहनीय व अनंतानुबंधीके उपशम क्षय क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ जो निर्विकार परिणमन है ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धा-नमय व परमार्थ आप्त आगम व मुनित्वके श्रद्धानरूप जो भाव है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

उसका मूल कारण भेदविज्ञान है। वास्तवमें मैं अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे हूँ, परके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे नहीं हूं, स्वयं स्व को करता हूँ, कोई दूसरा मुझ आत्माको कुछ नहीं करता, और न मैं किसी अन्यको करता हुँ, उसी प्रकार न मैं अन्यको भोगता हूँ इस तरहके भेदविज्ञानके बिना तथा "मे स्वतन्त्र हूँ, सहजज्ञानदर्शनस्वभावी हूँ, क्रोधादि विभाव अनित्य है और कर्म फल हैं" इस प्रकार के भेद-विज्ञानके बिना स्वभावके ग्रहण व परभावके त्यागमें रुचि नहीं हो सकती। अतः सम्यग्दर्शनका मूल कारण (उपाय) भेदविज्ञान ही है।

अथवा श्रद्धा, प्रतोति आदि तो ज्ञानकी पर्याय हैं और रुचि चरित्रकी पर्याय है अतः सम्यग्दर्शनका वर्णन इन शब्दोंमें भी सही नहीं हो सकता। इस कारण यह तात्पर्य लेना कि जिसके होने पर श्रद्धा, प्रतोति आदि ज्ञानकी पर्यायें और रुचि स्वाचरण आदि चारित्र की पर्यायें होती हैं उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं जिसके गर्भमें परम आह्लाद रहता ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाण – निर्विकारपरमात्मतत्त्वोपलब्धिलक्षणं, शुद्धात्मसंवित्तिमयं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मनि रागादिरहितस्वसंवेदनम् शुद्धात्मोपादेयसंवित्तिरूपं वा ज्ञानमिति निरुक्तेरात्मज्ञानयोश्च भेदाव्यवस्थितेरयमात्मा स्वं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् जानाति। तद्धि यदा परविषयकेन ज्ञानेन तद्विषयं परत्वेन परिच्छिनत्ति स्वविषयकेन ज्ञानेन च स्वं सर्वविविक्तत्वेन सहजशुद्धस्वभावत्वेनानुभवति तदा मोक्षमार्गरूपं सम्यग्ज्ञानमुच्यते।

णाण:—निर्विकार परमात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप, शुद्ध आत्मतत्त्व की संवित्ति (संवेदन) स्वरूप, विशुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभावो निज परमात्मामें रागादि रहित स्वका संवेदन होना सो ज्ञान है। जो जानता है उसे ज्ञान कहते ह, जिसके द्वारा जाना जाता है उसे ज्ञान कहते हैं अथवा जो जानना है उसे ज्ञान कहते हैं इस निरुक्तिसे आत्मा और ज्ञानमें भेद व्यवस्था न रहने से यह आत्मा स्वको स्वके द्वारा स्वके लिए स्वसे स्वमें जानता है। निश्चयसे वह जिस समय परविषयक ज्ञानके द्वारा पर विषयको पररूपसे जानता है और स्वविषयक ज्ञानके द्वारा स्वको सर्वसे विविक्तरूपसे और सहज शुद्धस्वभावरूपसे अनुभव करता है उस समय मोक्षमार्गरूप सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

ट्ठिउ—स्थितं तमात्मदर्शनज्ञानचारित्रेषु स्थितं। जीवः किल दर्शनज्ञानचारित्रेष्वेव स्थितो भवति परस्य परगुणपर्यायेषु स्थातुमशक्यत्वात् तथापि विशुद्धचैतन्यस्वभावनिजपरमात्मत्वभिन्नवपुर्विषयकषायेषु क्षणिकेषु स्वस्वकीयसंकल्पादनात्मदर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वेन वोभूयमानः पश्चात् स्वयोग्यद्रव्यक्षेत्रकालभावावाप्तौ यथार्थपरिज्ञानवलेन टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावस्वभावप्रतीतिपरिच्छित्तिचर्यानिष्ठः समास्ते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ट्ठिउ (स्थितं)—आत्मीय दर्शन ज्ञान चारित्रोंमें स्थितको स्वसमय जानो। यद्यपि जीव दर्शन ज्ञान चारित्रोंमें ही स्थित होते हैं क्योंकि पर पदार्थका परके गुणपर्यायोंमें रहना अशक्य है, असम्भव है, तो भी विशुद्ध चैतन्यस्वभावी निज परमात्मतत्त्वसे भिन्न क्षणिक शरीर विषय व कषायोंमें स्वकीय संकल्पसे अनात्मभूत पर द्रव्य व परभावोंमें श्रद्धान ज्ञान व रमणमें स्थित होने रूप बार बार होनेवाला यह जीव पश्चात् अपने योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावकी प्राप्ति होनेपर यथार्थ परिज्ञान व रमणमें निष्ठ हो जाता है।

तं हि–मायामिथ्यानिदानशल्यस्वरूपविभावपरिणामविपरीतविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मसहजरूपोपयुक्तं सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोहं स्वाश्रिताः वर्णादयो रागादयश्च केचनापि मे न संतीति श्रद्धाने तथैव ज्ञाने समाधिवलानुभूतचैतन्यस्वभावस्थितिरूपचारित्रे स्थितं परिणतम् हि-निश्चयेन।

तं हि—माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्यों स्वरूप विभाव परिणामोंसे विपरीत जो विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज परमात्माका सहज स्वरूप है उसमें उपयुक्तको स्वसमय जानो। सहज शुद्ध ज्ञान आनन्द एक स्वभाववाला मैं हूँ, मेरेमें प्रकट होनेवाले या मेरे निकट रहनेवाले रागादिक भाव व वर्णादिक भाव कोई भी मेरे नहीं हैं इस प्रकारके श्रद्धानमें व इसी प्रकारके ज्ञानमें तथा समाधिके बलसे अनुभूत चैतन्यस्वभावमें स्थित होनेरूप चारित्रमें स्थित याने परिणत आत्माको स्वसमय जानो। हि याने निश्चयसे अर्थात् निश्चयपूर्वक ऐसा ही जानो। इसमें रंच भी संदेह नहीं करना।

जाण—हे स्वहितमभिलिप्सो आत्मन्! स्वात्मनि स्वसहजरूपसंवेदनेनानुजानीहि। भगवदार्योक्त बुद्धिगतं स्वयं स्वसमयव्यक्तिशक्तिसम्पन्नमात्मानं कथयति नाचेतनम् तत्र जडत्वेन स्वयंसामर्थ्याभावात्तं प्रतीत्य व्यवहारस्य निमित्तत्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्त्ययोगात् । एतच्छ्रुण्वन्तः सर्वे स्वसहजज्ञानदर्शनस्वभाव-श्रद्धालवः शुद्धचैतन्यात्मवृत्तिनियतत्वमेवोपाददानाः स्वसमय-तामनुभवेयुः ।

जाण—हे आत्मकल्याण चाहनेवाले आत्मन् ! स्वात्मामें सहज-स्वरूपके संवेदनके द्वारा ऐसा ही जानो । यहाँ भगवान आचार्य बुद्धिगत स्वयं स्वसमयपनेकी प्रकटताको शक्तिसे सम्पन्न आत्माको कह रहे हैं । क्योंकि, अचेतन पदार्थमें जड़ता होनेसे स्वयं उस सामर्थ्यका अभाव होनेसे अचेतनको लक्ष्य करके होनेवाले व्यवहारमें निमित्तपना भी नहीं हो सकता ।

इसको सुननेवाले सब लोग निज सहजज्ञानदर्शनस्वभावके श्रद्धालु होते हुए शुद्ध चैतन्यस्वभावमें आत्मवृत्तिकी नियतताको प्राप्त करते हुए स्वसमयपनेको अनुभवें अर्थात् स्वसमयपनेका अनुभव करें ।

ससमयं–स्वसमयं-स्वस्मिन् सम् एकत्वेन युगपत् अयते गच्छति परिणमते जानातीति निरुक्तेः स्वं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् जानंतं परिणममानं जीवपदार्थम् । स्वसमयं जानीहीति ।

ससमयं (स्वसमयं)—अपने आपमें सम् याने एकतारूपसे एक साथ अयते, गच्छति अर्थात् परिणमता है व जानता है इस निरुक्तिसे स्वके द्वारा स्वके लिये स्वसे स्वमें जानते हुए परिणमते हुए जीव पदार्थको स्वसमय जानो ।

नन्वयं जीव आसंसारत एवानादिवद्धकर्मसंतत्युदय-निमित्तवशेनानात्मीयपदार्थाहंत्वाङ्गीकारात् पुद्गलकर्मोपदेश-स्थितः सन् परसमयो वर्तते कश्चिच्चासीत् पुनरत्र कुतः परसमयतावर्णनं विहाय प्रथमतः स्वसमयव्याख्योरूरीकृतेति चेन्न स्वसमयतायाः सहजरूपविकासत्वात्परपरिणतिखिन्नानामा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्वासनार्थत्वात्प्रकृतशास्त्रमुख्यविषयानुरूपत्वादपूर्वत्वात्परमार्थ-लक्ष्याभीक्ष्णोपयोगदेशनार्थत्वादभ्यर्हितत्वाच्च प्रागेव स्वसमय-निरूपणं युक्तमेव ।

प्रश्न—यह जीव अनादिकालसे ही अनादिबद्धकर्मोंकी संततिके उदयको निमित्त पाकर होनेवाले अनात्मीय पदार्थोंमें अहंपनेकी अङ्गीकारतासे (स्वीकारतासे) पुद्गलकर्मकृत पर्यायोंमें स्थित होता हुआ परसमय हो रहा है और कोई परसमय था फिर यहाँ परसमयताके वर्णनको छोड़कर पहिले स्वसमय की व्याख्या क्यों की गई है ?

उत्तर—निम्नलिखित कारणोंसे स्वसमयकी व्याख्या पहिले करना युक्त ही है—(१) स्वसमयपना सहजस्वरूपका विकास है। (२) परपरिणतिसे खिन्न हुए प्राणियोंको स्वसमयताका महत्त्व जाननेसे आश्वासन प्राप्त होता है। (३) स्वसमयताका वर्णन प्रकृत शास्त्रके मुख्य विषयके अनुरूप है। (४) स्वसमयता अपूर्व तत्त्व है। (५) परमार्थके लक्ष्यमें निरन्तर उपयोग देनेकी देशना आवश्यक है। (६) स्वसमयता पूज्य है। आदि कारणोंसे स्वसमय तत्त्वका पहिले वर्णन कर देना युक्त ही है।

पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च—मुख्यं लक्ष्यभूतं सहजावस्था-गर्भं स्वसमयं व्याख्यायातीतकथानुरूपावस्था च शब्देन गौण-रूपतयेव व्यावर्ण्यते-पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं-ज्ञानदर्शनशान्त्यानन्द शक्त्यावरकेन्द्रियानुभवभवस्थितिदेहनिर्वर्तकलघुगुरुव्यपदेशक - रूपरसस्पर्शगंधपरिणतेन्द्रियागोचरदृष्टानुभूतविविधफलनि - मित्तभूतकर्मोदयजनितनारकादिरागाद्यपदेशदेशितविभावाव - स्थोपयुक्तम् । नहि पुद्गलकर्माणि जीवस्य सुखदु:खादि-परिणतिं कर्तुं तत्परिणत्या परिणमितुं शक्नुवंति परेण परभावस्य कर्तुमशक्यत्वात्किन्तु निमित्तमात्रकर्मोदयकाले स्वविशुद्धचैतन्यस्वभावोपयोगच्युतो जीवः "परद्रव्याणि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्माणि रागद्वेषौ कुर्वन्ति कायवाङ्मनसां कर्माहं करोमि परं कर्मफलं च वेदये परद्रव्याणि जानामि पश्यामीति" स्वविभाव-परिणतिरूपविकल्पनयैव पुण्यपापादिविकाररूपोहमित्यहंकार-मूलपरात्मप्रतीतिज्ञानचर्यास्थितः परमग्नः परसमयः प्रतीयते ।

पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च—मुख्य लक्ष्यभूत, जिसमें सहज अवस्था गर्भित है ऐसे स्वसमयका व्याख्यान करके अतीत कथाके अनुरूप अवस्था का वर्णन करते हैं। यहाँ च शब्द दिया है जिससे यह ध्वनित होता है कि इस परसमय अवस्थाका गौणरूपसे वर्णन करते हैं। पुग्गलकम्म-पदेसट्ठियं—इसका अर्थ है, पुद्गल कर्मके उदयसे उत्पन्न हुए नारकादिक व रागादिक नामसे संज्ञित विभाव अवस्थामें उपयुक्त जीवको परसमय जानो। कैसे हैं ये पुद्गल कर्म—(१) ज्ञानका आवरण करनेवाले, (२) दर्शनका आवरण करनेवाले, (३) शांति व आनंदका आवरण करनेवाले, (४) शक्तिका आवरण करनेवाले, (५) इन्द्रिय द्वारा साता असाताके अनुभव करानेवाले, (६) भवस्थितिके करानेवाले, (७) देहकी रचना करानेवाले व (८) छोटे बड़े नाम (गोत्र) के धरानेवाले हैं। और कैसे हैं ये पुद्गल कर्म—रूप, रस, गन्ध स्पर्शरूप परिणत हैं, इन्द्रियोंके अगोचर हैं, दृष्ट व अनुभूत नाना प्रकारके फल देनेके निमित्तभूत हैं जिनके उदयसे होने वाली विभाव अवस्थामें उपयुक्त जीव परसमय होता है।

वास्तवमें पुद्गल कर्म जीवके सुख दुःखादिक परिणमन करनेके लिये व सुख दुःखादिक परिणतिसे जीवको परिणमानेके लिये समर्थ नहीं हैं, क्योंकि पर पदार्थके द्वारा अन्य परका भाव किया नहीं जा सकता। किन्तु मात्र निमित्तभूत कर्मोंके उदयके कालमें निज विशुद्ध चैतन्य स्वभावके उपयोगसे च्युत हुआ जीव 'पर द्रव्य व कर्म राग द्वेष करते हैं, मैं शरीर वचन मनकी क्रिया करता हूं, मैं पर पदार्थको व कर्मफलको भोगता हूँ, मैं पर द्रव्योंको जानता हूँ देखता हूँ" इत्यादि स्वविभाव-परिणमनरूप नाना कल्पनासे ही पुण्यपापादि विकाररूप मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हूँ ऐसे अहङ्कारसे उत्पन्न जो पर पदार्थमें आत्माकी प्रतीति ज्ञान व चर्या उसमें स्थित होता हुआ पर पदार्थमें मग्न जीव परसमय है ऐसा जाना जाता है ।

तं जाण परसमयं—यथोक्तप्रकारतया विज्ञातं पुद्गलकर्मोदयजनितनारकादिव्यञ्जनपर्यायरागादिविभावार्थपर्याये - ष्वहंतया स्थितं तं जीवं परसमयं जानीहि ।

तं जाण परसमयं—यथोक्त प्रकाररूपसे जाने गये व पुद्गल कर्मोदयजनित नारकादि व्यञ्जनपर्याय व रागादि विभाव अर्थपर्याय (गुणपर्याय) में अहंरूपसे स्थित उस जीवको परसमय जानो ।

एवं समयसंज्ञितो जीवनामा पदार्थो विभावस्वभावपरिणतिगतत्वेन द्विविधः प्रतीयते ।

इस प्रकार समयशब्दसे संज्ञित जीवनामात्मक पदार्थ विभावपरिणमन व स्वभावपरिणमनमें गया हुआ होनेसे दो प्रकारका (परसमय व स्वसमय) जाना जाता है ।

तत्र शुद्धात्मस्वभावः कः ? क्व च सत्यविश्राम इति केनचिज्जिज्ञासुना पृष्ट इवार्यः प्राह ।

उसमें शुद्ध आत्मस्वभाव क्या है और कहाँ सत्य विश्राम हुआ करता है इस प्रकार मानो किसी जिज्ञासुद्वारा पूछे गये आचार्यदेव कहते हैं—

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए ।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥३॥

सम् एकीभावरूपेणायते स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति व्युत्पत्त्या समयसंज्ञिने जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्यात्मनि लोके त्रिशतत्रिचत्वारिंशद्घनरज्जुमाने लोके वा सर्वत्र प्रति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तिगः समयः स्वकीयसाधारणासाधारणानंतधर्ममयः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावास्तित्वसंपन्नः परस्परमितरेतरद्रव्यक्षेत्रकालभावेभ्योत्यन्तव्यतिरिक्तत्वेन कदाचिदपि स्वरूपापरित्यागादनेकानुकूलभावक्रियावन्निमित्तसंयोगमात्रगतोपि पररूपेण कदाचिदप्यपरिणमनाच्च स्वगुणगुणविशेषाणामेव निःशेषाणां चयरूपत्वेन स्वगुणैकत्वनिश्चयगतः सुन्दरः शोभास्पदो वर्तते। अथवा—एकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवसंकुलिते लोकेस्मिन् सर्वत्रैकेन्द्रियादिजातिषु स्वगुणैत्वनिश्चयगतत्वेन स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतः सम्यग्यदर्शनज्ञानचारित्राणामभेदपरिणतेवैकत्वनिश्चयगतः शुद्धनिश्चयनयविषयीभूतः समेकत्वेन युगपत्स्वगुणपर्यायान् व्यवहारेण सर्वज्ञेयानयते जानातीति निरुक्तेः समयसंज्ञितः शुद्धात्मा सुन्दर उपादेयः समस्ति। एवमुक्तप्रकारेण सर्वसमयानामेकत्वे सत्यपि स्वगुणपर्यायमात्रप्रतिष्ठितत्वेपि जीवनाम्ना समयेन सह या बंधकथा कर्मोदयजनितगुणस्थानमार्गणादिरूपपर्यायसम्बन्धकथा मायामिथ्यानिदानाद्यशुभकर्मवत्सलाद्यनुरागादिशुभविभावसम्बन्धकथा प्रवर्तते सा विसंदिनी वंधोपयोगयुक्तस्याकुल्यविघायिनी शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्वरूपं नास्तीति हेतोरसत्या भवति।

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥ ३ ॥

सम अर्थात् एकीभावरूपसे अयते अर्थात् अपने गुण पर्यायोंको जो प्राप्त होता है उसे समय कहते हैं इस व्युत्पत्तिसे समय नाम जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इन छह द्रव्योंमय लोकका हुआ, ऐसे षड्द्रव्यात्मक लोकमें अर्थात् ३४३ घन रज्जूप्रमाण लोकमें सर्वत्र प्रतिव्यक्ति अर्थात् प्रत्येक आवान्तरसत्तागत प्रत्येक पदार्थ अपने अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणोंके एकत्वमें प्राप्त हुआ ही सुन्दर रहता है। अपने ही गुणोंकी एकतामें गत वह समयनामक सुन्दर पदार्थ कैसा है। वह समय अपने साधारण व असाधारण अनन्त धर्मोंमें तन्मय है, अपने ही द्रव्यक्षेत्रकाल-भाव के अस्तित्वसे सम्पन्न है, परस्पर एक दूसरेके द्रव्य क्षेत्र काल भावों से अत्यन्त भिन्न होनेसे कभी भी अपने स्वरूपका परित्याग नहीं करने से अनेक अनुकूल भाववान व क्रियावान निमित्तोंके संयोगमात्रमें पहुँचा हुआ भी पररूपसे कभी नहीं परिणम सकनेके कारण समस्त अपने ही गुण व गुणविशेषोंके समुदायरूप होनेसे अपने ही गुणोंके एकत्वके निश्चयमें पहुँचा हुआ है। एकत्वनिश्चयको प्राप्त समय सुन्दर है, शोभास्पद है।

अथवा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जीवोंसे संकुलित (व्याप्त) इस लोकमें सर्वत्र एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जातियोंमें अपने ही गुणके एकत्वके निश्चयको प्राप्त होनेके कारण अपने ही शुद्ध गुण पर्यायमें परिणत अथवा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र गुणोंकी अभेद परिणति होनेसे एकत्वके निश्चयको प्राप्त शुद्धनिश्चयनयका विषयभूत समयनामसे संज्ञित शुद्ध आत्मा ही सुन्दर है, उपादेय है। यहाँ समय शब्दकी ऐसी निरुक्ति लेना—सम् एकत्वेन युगपत् अयते जानाति इति समयः अर्थात् जो एक साथ अपने गुण पर्यायोंको व व्यवहारसे समस्त ज्ञेय अर्थोंको जानता है उसे समय कहते हैं।

इस तरह उक्त प्रकारसे समस्त समयों (द्रव्यों) के अपने अपने स्वरूपका एकत्व होनेपर भी अपने ही गुणपर्यायमात्र में प्रतिष्ठित-पना होनेपर भी जीवनामक समयके साथ जो बंधकथा अर्थात् कर्मो-दयजनित गुणस्थान मार्गणा आदि पर्यायसम्बन्धी कथा अथवा माया मिथ्या निदानादि अशुभभाव सम्बन्धी कथा तथा धर्मिवत्सलता प्रेम आदि शुभभावसम्बन्धकी कथा प्रवर्तित हो रही है वह विसम्वादिनी होती है अर्थात् विडम्बनारूप होती है अथवा असत्य होती है। इसका कारण यह है कि यह बन्धकथा बन्धके उपयोगमें युक्त पुरुषके अकुलताको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही उत्पन्न करनेवाली है और यह बन्धकथा शुद्ध निश्चयनयसे अथवा परमशुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है। इसी कारण यह बन्धकथा असत्य है।

तस्मादेव यथा लौकिकसभ्यः क्रोधमानादिप्रवृत्तिषु स्वमशोभनं मन्यमानो लज्जते तथा ज्ञानी निजात्मनि, पुण्यं शुभं, यथेष्टं संपत्, इत्यादिरूपेण कर्मणो विषयस्य सम्बन्धिनीं कथां श्रृण्वन्नपि लज्जते तस्य श्रद्धातवस्तुत्वात्। सर्वद्रव्याणि परस्परमत्यन्तं भिन्नानि तेषां द्रव्यक्षेत्रकालभावास्तेषां स्वेषामेवाश्रिताः संसन्ति, निखलानि संवज्ञितयोः पयःपयसोः क्षीरं क्षीरमेव सलिलं सलिलमेवेतीव स्वैकत्वे वसन्ति। न हि लोकेस्मिन्नेकत्र जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणामवस्थितत्वेपि परस्परं कानिचित्किञ्चन चुम्बन्ति। परस्परं विरुद्धाविरुद्धकार्येषु निमित्तत्वेपि वास्तविकसम्बन्धस्य लेशमात्रस्याप्यभावात्। यतो ह्यनेकनिमित्तोपस्थितौ विवक्षिताः कार्यापरनामानः पर्यायाः स्वस्वद्रव्यसामान्यपरिणतय एव संति परिणतिशून्यद्रव्यस्यात्यन्तनानास्तित्वप्रसक्तेरवश्यंभाविपरिणामित्वात्। हे आत्मन्! त्वमिव धर्माधर्माकाशकालनामानोमूर्ताः पदार्थाः प्राप्तैकत्वाः सन्ति स्वयं च वद्धं मन्यमानः किञ्चिदपि नाटपटायसे। पुद्गलस्याणोरसंवद्धतां सरलतया संमन्यमानस्य तव स्वस्यासंवद्धता ज्ञाने न स्याद्धन्त! कुदृष्टिरियमेव विसंवादिनी। वर्तमानक्षणिकसंयुक्तावस्थादृष्टिं विहायारूपिणमखण्डं निजात्मानं पश्य तत्र वन्धनं नाम किञ्चिदपि नास्ते। यत्र दृष्टौ संयोगो दृश्यते सैव विसंवादिनी सा शुद्धनिश्चयनयेनासत्या। व्यवहारनयेन बंधनस्य सत्यत्वेस्यालम्बनं भवभ्रमणवीजम्। यतो हि व्यवहारनयप्रवृत्तौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्तिरेव वर्द्धते। निश्चयनयप्रवृत्तावचिरं प्रवृत्तिर्निवर्त्तते।

इस ही कारणसे जैसे कि लौकिक सभ्य पुरुष क्रोध मान आदि प्रवृत्तियोंमें अपनेको असुन्दर मानते हुए लज्जित होते हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष निज आत्मामें "पुण्यभाव है शुभभाव है यथेष्ट संपदा है" इत्यादि रूपसे कर्मके विषयकी सम्बन्धिनी कथाको सुनता हुआ लज्जित होता है, क्योंकि ज्ञानी पुरुषके उपयोगमें तो श्रद्धा किये गये ध्रुवतत्त्वके ही वस्तुपना है।

समस्त द्रव्य एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न ह। उनके द्रव्य क्षेत्र काल भाव उनही अपने अपनेके आश्रित हैं। जैसे कि मिले हुए दूध और पानीमें दूध दूध ही है और पानी पानी ही है उसी प्रकार समस्त द्रव्य अपने एकत्वमें निजस्वरूपमें बसते हैं अर्थात् प्रत्येक द्रव्य खुद खुद ही है और अन्यरूप नहीं है। इस लोकमें एक ही स्थानमें जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छहों द्रव्य अवस्थित हैं तो भी कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्यको अर्थात् द्रव्यके चतुष्टयको छूते नहीं हैं, क्योंकि उनका परस्पर विरुद्ध और अविरुद्ध कार्योंमें निमित्तपना होनेपर भी लेश मात्र भी वास्तविक सम्बन्ध उनमें नहीं है। इसका कारण यह है कि अनेक निमित्तोंकी उपस्थिति होनेपर भी विवक्षित पर्यायें जिनका कि दूसरा नाम कार्य भी है अपने अपने द्रव्यसामान्य की परिणतियाँ ही तो हैं, क्योंकि परिणतिशून्य द्रव्यका तो बिलकुल अभाव हो जावेगा, अतः प्रत्येक द्रव्यका निरन्तर परिणमते रहना अवश्यंभावी है।

हे आत्मन्! धर्म अधर्म आकाश व कालनामक ये पदार्थ तेरी ही तरह तो अमूर्त हैं, अपने आपमें अपने स्वरूपकी एकताको प्राप्त हैं, देखो ना कैसे अक्षुब्ध हैं शुद्ध हैं; किन्तु तू अपने आपको खुदको बद्ध मान रहा है सो ऐसा मानते हुए तुझे कुछ भी अटपटसा नहीं मालूम देता। पुद्गलकी, परमाणुकी असम्बद्धताको सरलतासे जल्दी ही समझ लेनेवाले तेरे ज्ञानमें अपने आपके खुदकी असम्बद्धता न समझमें आवे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो बड़े खेदकी बात है; हाय यह कुदृष्टि ही विडम्वना करनेवाली है। हे आत्मन्! तू वर्तमान क्षणिक संयुक्त अवस्थाकी दृष्टिको छोड़ कर अरूपी अखण्ड निज आत्माको तो देख वहाँ बन्धन नामकी कोई भी चीज नहीं है। जिस दृष्टिमें संयोग देखा जाता है वही दृष्टि विसम्वाद करनेवाली है, वह दृष्टि शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें असत्य है। व्यवहारनयसे बन्धनकी सत्यता होनेपर भी इसका आलम्बन ससारमें भटकनेका वीज है (कारण है); क्योंकि व्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें प्रवृत्ति ही वढ़ती है और निश्चयनयकी प्रवृत्तिमें प्रवृत्ति शीघ्र निवृत्त हो जाती है।

एकत्वनिश्चयगतो ज्ञानी परप्रवृत्तिकर्त्तृत्वं न मन्यते। न च दातासि परस्योपकर्तासीत्यादिवाक्यं श्रृण्वन् हृष्यति प्रत्युत परोपाधिकां प्रशंसां श्रुत्वा स्वरूपच्युतविषयिनीं निन्दां मन्यते। अथ पदव्याख्या क्रियते—

एकत्व स्वरूपके निश्चयको प्राप्त ज्ञानी आत्मा परपदार्थकी प्रवृत्ति अथवा परिणतिका कर्ता अपनेको नहीं मानता है। "तुम दानी हो, तुम परोपकारी हो" इत्यादि वाक्यको सुनकर ज्ञानी पुरुष हर्ष भी नहीं करता है, बल्कि पर पदार्थकी उपाधि लगा कर होने वाली प्रशंसा को सुनकर ज्ञानी तो उस प्रशंसाको स्वरूपच्युतविषयक निन्दा ही मानता है।

भावार्थ यदि कोई कहता है ज्ञानीको कि तुम दानी हो परोपकारी हो तो उसका अर्थ यही समझता है कि मुझे यह कहा जा रहा है कि तेरी दृष्टि स्वभावपर नहीं है तू पर पदार्थके त्यागका अपनेको कर्ता समझता है तू पर पदार्थकी परिणतिका कर्ता बन रहा है इस प्रकार स्वरूपसे च्युत होना बताने वाली निन्दाको ही मानता है।

अब पदों की व्याख्या की जाती है :—

एयत्तणिच्छयगओ—एकस्य धर्मिणः भाव एकत्वं स्वकीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धगुणपर्यायाभिन्नत्वं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूप-स्वसंवेद्यशुद्धात्मत्वं तस्य निश्चयः निर्गतश्चयः भिन्नसंग्रहो यस्मात् निःशेषाणां धर्माणां अभेदेन चयो वा स निश्चय अभेदपरिणतिरभेदोपयोगो वा तत्र गतः प्राप्तः एकत्वनिश्चय-गतः स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतः।

एयत्तणिच्छयगओ :—एकके (धर्मी वस्तु के) भावको एकत्व कहते हैं अर्थात् केवल अपने शुद्ध गुण पर्यायकी अभिन्नताको एकत्व कहते हैं। आत्माके विषयमें—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकता परिणतिरूप स्वसंवेद्य शुद्धात्मपनको एकत्व कहते हैं उसके निश्चयमें प्राप्तको एकत्वनिश्चयगत कहते हैं। निश्चयका अर्थ है निर्गतः चयः यस्मात् अर्थात् भिन्न पदार्थोंका संग्रह या गुणसंचय आदिक जिससे निर्गत हैं उसे निश्चय कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि किसी भी पदार्थमें किसी भी अन्य पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायका स्पर्श नहीं और अपने ही समस्त धर्मोंका अभेद है। अथवा अभेदपरिणति को व अभेद उपयोगको भी निश्चय कहते हैं उसमें प्राप्त समयको एकत्वनिश्चयगत समय कहते हैं।

समओ—समं अभेदं यातः, सम् एकीभावेन गुणपर्यायान् अयन्, मयेन त्रिकालैकरूपगमनापरनामपरिणमनेन सहितः—समं रागद्वेषादिकल्लोलरहितं परिणामं यातःसमः सद्दृशो बोधो यत्र वा, सं संगतः सर्वज्ञानेष्वनुगतः अयः प्रतिभासरूपो वा समयः कश्चिदप्यर्थः सामान्याविरुद्धपरिणतो वात्मेति।

समओ—समं अभेदं यातः समयः अर्थात् जो अभेदको प्राप्त हो उसे समय कहते हैं। सम् एकीभावेन गुणपर्यायान् अयन् अर्थात् जो एकीभाव रूपसे गुण पर्यायोंको प्राप्त हो रहा है उसे समय कहते हैं। मयेन सहितः समयः अर्थात् जो त्रिकाल एकरूप गमन अथवा परिणमन सहित हो उसे समय कहते हैं। इस प्रकार समय नाम किसी भी पदार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का है। समं यातः समयः सम अर्थात् राग द्वेष आदि कल्लोलों से रहित परिणामको जो प्राप्त हो उसे समय कहते हैं। समः अयः यत्र स समयः सद्दृश बोध जहाँ पर हो उसे समय कहते हैं। सं संगतः अयः समयः जो सर्व ज्ञानोंमें अनुगत प्रतिभास स्वरूप है उसे समय कहते हैं। इस प्रकार समय नाम सामान्यभावसे अविरुद्ध परिणत आत्मा का है।

सव्वत्थ लोए—सर्वत्र लोके ऊर्ध्वाधोमध्यविभक्तजगति, दृष्टादृष्टेषु सर्वद्रव्येषु, सर्वावस्थासु, शुद्धनिश्चयनयेन जीवानामेकेन्द्रियाद्यवस्थासु, पुद्गालानां द्व्यणुकाद्यवस्थासु इति।

सव्वत्थ लोए :—सब जगह लोकमें, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक व अधोलोकमें विभक्त इस जगतमें, सब द्रव्योंमें, सब द्रव्योंकी सब अवस्थावोंमें, शुद्ध निश्चयनयसे जीवोंकी एकेन्द्रियादि सब अवस्थावोंमें, पुद्गलोंकी द्व्यणुकादिक अवस्थावोंमे। ये अर्थ यहाँ सव्वत्थ लोए के जानना।

सुंदरो—सुन्दरः समीचीनः, विकल्परहितः, सामान्यस्पर्शितत्त्वेन एकप्रभुत्वावच्छिन्नः, अबद्धः, विसंवादरहितः, उपादेयः प्रज्ञया गृहीतव्यः, योगिजनोपयोगैकराज्यविषयः समस्ति।

सुंदरो :—सुन्दर, समीचीन, विकल्परहित, सामान्यस्पर्शी तत्त्वके साथ एकप्रभुतासहित, अबद्ध, विसम्वादरहित, उपादेय, प्रज्ञा (विवेक) से ग्रहण करने योग्य, योगिजनोंके उपयोगके एकच्छत्र राज्यका विषयभूत जो है वह सुन्दर है।

एयत्ते—एवंविधमेकत्वं स्वभावतः सर्वत्र द्रव्येषु समस्ति तथापीति। तथाहि सर्वाणि द्रव्याणि परस्परतो द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतोत्यन्तभिन्नानि स्वस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावेषु तन्मयानि द्वैविध्यलेशमपि सोढुमशक्तानि स्वगुणपर्यायमात्राणि सन्ति स्वयं च स्वैः स्वानि स्वेभ्यः स्वेषु सृजन्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एयत्ते :—'ऐसा एकत्व समस्त द्रव्योंमें स्वभावसे है तो भी।" इसका तात्पर्य यह है कि समस्त द्रव्य परस्पर द्रव्य क्षेत्र काल भावसे अत्यन्त भिन्न हैं, अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावमें तन्मय हैं, द्विविधपना लेशभी सहनेमें असमर्थ हैं, निजगुणपर्यायमात्र हैं, स्वयं अपने द्वारा अपनेको अपने लिए अपनेमें अपनी रचना करते रहते हैं। तो भी (इसका सम्बन्ध आगे पदसे है)।

बंधकहा-सम्बन्धकथा—परस्य कर्मणः जीवेन सह सम्बन्धस्य मान्यता अथवा कर्मोदयनिमित्तवशादुद्भूतक्रोधादिभावा अहं मे वेति श्रद्धा कर्मजनितगुणस्थानादिपर्यायेषु स्वास्तिकता वा।

बंधकहा :—सम्बन्धकथा—पर पदार्थ कर्मकी जीवके साथ सम्बन्ध मानने की मान्यता अथवा कर्मोदयके निमित्तके वशसे उत्पन्न हुए क्रोधादिभाव मैं हूँ अथवा क्रोधादिभाव मेरे हैं ऐसी श्रद्धा अथवा कर्मजनित गुणस्थानादि पर्यायोंमें आत्मा (स्वयं) है ऐसी बुद्धिको बंधकथा कहते हैं।

तेण विसंवादिणी होदि—तेन पुद्गलानामुपयोगरहितत्वेन, पुद्गलानामविवक्षितत्वात् जीवपदार्थेन सह विसंवादिनी विवादकारिणो आकुल्योत्पादिनी भवति अथवा यतः कारणात्, वस्तुतत्त्ववशात् वस्तुत एकत्वं समस्ति तथापि जीवद्रव्येण सह या बंधकथा कर्मसंबंधकथाथवा कर्मजनितपर्यायस्वरूपकथा प्रवर्तते सा असत्या वर्तते, निश्चयनयेन जीवस्वरूपं नास्ति।

तेण विसंवादिणी होदि :—पुद्गलोंके तो उपयोग है नहीं और न उनकी विवक्षा होती सो बंधकथा उस जीव पदार्थके साथ ही विसंवादिनी अर्थात् विवादकारिणी अथवा आकुलताकी उत्पादिनी होती है। अथवा यद्यपि वस्तुस्वरूपसे वस्तुके एकत्व ही है तो भी जीवद्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ जिस किसी कारणसे भी जो बन्धकथा कर्मसम्बन्धकथा व कर्मजनित पर्यायस्वरूपकथा प्रवर्तित होती है या प्रवर्तित हो गई है वह सत्य है अर्थात् निश्चयनयसे वह जीवका स्वरूप नहीं है।

इदमत्र तात्पर्यम्—यतः सर्वेर्थाः निश्चयेन स्वस्वभावे स्थिता राजन्ते ततो जीवेन सह निमित्तनैमित्तिकभावेन कर्मणः सम्बन्धस्य कथा बंधावस्था बंधकथा विसंवादकरित्वाच्छोभते नैव ततो जीवस्यैकत्वावस्था, एकत्वोपयोगः स्वशुद्ध-गुणपर्यायाभेदोपयोगः कर्त्तव्यः।

यहाँ यह तात्पर्य लेना—चूंकि समस्त पदार्थ निश्चयसे निज निज-स्वरूपमें ही स्थिर होकर शोभित हैं इस कारणसे निमित्त नैमित्तिक-भावसे जीवके साथ कर्मके सम्बन्धकी कथा, बन्धअवस्था, बन्धकथा विसंवाद करनेवाली होनेसे शोभित ही नहीं होती। इसलिए कल्याणार्थीको जीवके एकत्वकी अवस्था, एकत्व का उपयोग निजके शुद्ध गुण पर्यायके अभेदका उपयोग करना चाहिए।

अथैकत्वस्य स्वभावत्वात्कथं न तदुपलम्भ इति पृष्ट इवार्यस्तत्त्वस्य श्रुतत्वाभावात् परिचितत्वाभावादनुभूतत्वाभावात्सुलभत्वं नास्त्यनुभूतस्यैव चात्यन्तसुलभत्वमिति कारणादेकत्वस्योपलम्भो न सुलभ इति रहस्यं प्रकटयन्नाह—

अब एकत्व तो स्वभावरूप ही है उसकी प्राप्ति कैसे नहीं है मानो इस प्रकार पूछे गये आचार्य "तत्त्वके सुने जानेके अभाव होनेसे, परि-चितपनेका अभाव होनेसे, अनुभूतपना का अभाव होनेसे सुलभता नहीं, और अनुभूत तत्त्वकी ही अत्यन्त सुलभता होती है" इस रहस्यको प्रकट करते हुए कहते हैं :—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्सवि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इहोपात्तपुण्यपापशुभाशुभभावविकारात्मदृष्टिक्रोडाधिरोपितचतुर्गतिचक्रभ्रान्तेः पट्टबद्धचक्षुषश्चक्रकवाहिवलीवर्दस्येव रागद्वेषमीलितज्ञाननयनस्येन्द्रियानिन्द्रियविषयचक्रकवाहिनो भ्रान्त्या सरलं शिवं नवं पंथानं व्रजामीति मन्यमानस्य सर्वस्य प्राणिनः कर्तृत्वभावरूपकामभोक्तृत्वभावरूपभोगसम्बन्धिनी कथा मुहुर्मुहुः श्रुता परिचितानुभूता चेति हेतोः कामभोगकथा सुलभा, किन्त्वनाद्यनन्तस्वसहायाखण्डत्वावच्छिन्नचैतन्यस्वरूपस्य सनातनप्रकाशमानस्यापि पर्यायबुद्धितया तिरोभूतस्य गुणपर्यायानुगतस्यैकत्वस्योपपलम्भो दुर्लभो भूतः। अनादित इमे प्राणिनो निगोदभवेष्वनंतशो जन्ममरणानि कुर्वन्तः कथमपि त्रसराशिं प्राप्य संज्ञिनश्च भूत्वापि मनुजभुक्तत्यक्तमलभक्षिणः शूकरादय इव ज्ञानित्यक्तपुण्यवैभवमलानि सुहितं मन्यमानाः भवेषु वम्भ्रमन्ति। "इमे पूर्वविहितपुण्यविपाकतः समुपलब्धभोगान् भुञ्जन्ते" श्रुत्वा हर्षपरिणत्या, तदुत्साहेन स्वपरैकत्वाध्यासविपाकेन मलीमसा कर्तृत्वबुद्धिं भोक्तृत्वबुद्धिं च कुर्वन्ति। कामभोगभावा किल निमित्ताधीनदृष्टिं विना नोत्पद्यन्ते, निमित्तरूपपरलक्ष्याभावे स्वयजातस्वसंवेदनसद्भावे कामभोगविकल्पाः स्वयं नश्यन्ति। परकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितं पराश्रयशून्यं पुण्यपापोभयपरिहरणस्वभावं विकल्पवृत्तिविलक्षणं सदान्तःप्रकाशमानं सहजस्वरूपदृष्ट्यनुभूतं टंकोत्कीर्णवत्स्वयं सिद्धं ज्ञायकमात्रमेवाहमिति भावनया तद्रूपः सन्नध्यात्मयोगी किलाध्यात्मपदं लभते। अत्र ह्यखण्डचिदानंदध्रुवस्वभावाश्रयः कारणं यश्चात्मा विशदभिन्नोनुभूयते तत्फलं कार्यमित्यर्थः।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्सवि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ समस्त प्राणियोंको कर्तृत्वभावरूपकामसम्बन्धिनी कथा और भोक्तृत्वभावरूपभोगसम्बन्धिनी कथा तो बार बार सुनी, परिचित हुई, अनुभूत हुई इस कारणसे कामभोग कथा सुलभ रही हैं। कैसे हैं ये प्राणी ? (१) पुण्य, पाप, शुभ, अशुभ भाव विकारोंमें उपात्त (लगी) जो आत्मदृष्टि वही हुआ क्रोड (मध्य केन्द्र) उस पर अधिरोपित जो चतुर्गतिका चक्र उसमें जिसका परिभ्रमण हो रहा है, (२) पाटी से बँधी हैं आँखें जिसकी ऐसे कोल्हूके बैलकी तरह राग द्वेषसे ढक गये हैं (मिच गये हें) ज्ञानरूपी नेत्र जिसके ऐसे होते हुए इन्द्रियविषय और मनविषयके चक्रको ढो रहे हैं, (३) विपरीत मार्गपर चलते हुए भी मैं सीधा कल्याणमय नवीन मार्गपर जा रहा हूँ ऐसा भ्रमसे माननें वाले हैं। ऐसे इस प्राणीको कामभोगवंधकथा सुलभ हो रही है। किन्तु सतत प्रकाशमान होते हुए भी अनादि अनन्त स्वसहाय अखण्ड चैतन्यस्वरूपकी जा कि गुणपर्यायोंमें अनुगत है एकत्वस्वरूप है, उपलब्धि दुर्लभ हो गई है, क्योंकि इस प्राणीके पर्यायबुद्धि होनेके कारण यह चैतन्यस्वरूप तिरोभूत हो गया है अर्थात् इसकी दृष्टिमें नहीं आ रहा है।

अनादिकालसे ये प्राणी निगोद पर्यायोंमें अनन्त बार जन्म मरण करते हुए किसी भी प्रकार त्रसराशिको पाकर और सञ्ज्ञी (मनसहित) होकर भी मनुष्यके द्वारा भोग कर त्यागे गये मलको खाने वाले शूकर आदिकी तरह ज्ञानियों द्वारा त्यागे गये पुण्यवैभवमलोंको बड़ा हित मानते हुए भवोंमें बार बार भ्रमण कर रहे हैं

"ये पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके फलसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगते हैं" यह सुनकर हर्षपरिणतिसे, हर्षभरे उत्साहसे व स्व परके एकत्वके निश्चयके परिणामसे मलीमस (मलिन) हुए प्राणी कर्तृत्वबुद्धि और भोक्तृत्वबुद्धिको करते हैं। कामके व भोगके भाव निमित्ताधोतदृष्टिके बिना, संयोगदृष्टिके बिना उत्पन्न नहीं होते; निमित्तरूप पर पदार्थके लक्ष्यके अभावमें व स्वयंजात स्वसंवेदनके सद्भावमें ये काम भोगके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प स्वयं नष्ट हो जाते हैं। वास्तवमें "पर पदार्थके कर्तृत्वभावसे व भोक्तृत्वभावसे रहित, पराश्रय रहित, पुण्य व पाप दोनोंसे जुदा रहनेका स्वभाववाला, विकल्पवृत्तियोंसे विलक्षण, सदा अन्तःप्रकाशमान, सहजस्वरूपकी दृष्टिसे अनुभूत, टङ्कोत्कीर्णवत् स्वयंसिद्ध ज्ञायकमात्र ही में हूँ" इस भावनाके द्वारा तद्रूप होता हुआ अध्यात्मयोगी अध्यात्मपदको प्राप्त करता है।

यहाँ यह तात्पर्य हुआ कि अखण्ड चिदानन्द ध्रुवस्वभावका आश्रय तो कारण है और जो आत्मा स्पष्ट भिन्न अनुभवमें आ रहा ह वह कार्य है अथवा फल है।

इत्थंदृष्टिविरहिताः "पुण्याद्धर्मो भवति तत एव चात्मसुखम् इति कामनायाः कथां विकथां कुर्वन्ति। निमित्ताच्च धर्मो भवतीति बुद्ध्या निमित्तादरमात्रभावरूपभोगस्य कथां विकथां कुर्वन्ति। परं चेत्थं परपदार्थसबन्धभावरूपबंधनकथामनन्तशः श्रुतवन्तोप्यनंतशः परिचितवन्तोप्यनंतशोनुभूतवन्तः परांश्च शृणु परिचयानुभवेति दिशा नियुक्तवन्तः संक्लेशभावपरिश्रमशीलाः सन्तः पर्यायबुद्धिदुरभिनिवेशमोहिप्राणिसंगतिं कुर्वन्तः चतुरशीतिलक्षयोनिषु जायमानाः बम्भ्रमन्ति।

इस प्रकारकी स्वभाव दृष्टिसे रहित पुरुष "पुण्यसे धर्म होता हैं और उससे ही आत्मसुख होता है" इस प्रकार कामनाकी कथाको, विकथाको करते हैं। और, "निमित्तसे धर्म होता है" इस बुद्धिसे निमित्तका आदरमात्र भावरूपी भोगकी कथाको, विकथाको करते हैं। और क्या—इस प्रकार पर पदार्थके सम्बन्धका भाव करनेरूप बन्धनकी कथाको अनन्तबार सुननेवाले अनन्तबार परिचय करनेवाले अनन्तबार अनुभव करनेवाले हैं और दूसरोंको "सुनो परिचय करो अनुभव करो" इस प्रकारके उपदेशके द्वारा बंधकथामें नियुक्त करनेवाले हैं, सो संक्लेशभावका परिश्रम करते रहते हुए पर्यायबुद्धिके दुरभिप्रायवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहीं प्राणियोंकी संगति करते हुए चौरासी लाख योनियोंमें उत्पन्न हो हो भ्रमण करते रहते हैं।

धर्मिसंगविधाने तु स्वयं स्वं पूर्णशक्तिमयं श्रद्धाय स्वस्मिन् स्थैर्यं प्राप्स्यन्ति यतो हि किल ज्ञानिस्वरूपोपयोगे ज्ञानिसंगतिः समस्ति। ज्ञानिदेहवाङ्मनसां चेष्टां दृष्ट्वा तत्रैवोपयोजनमप्यचेतनसंगतिर्न तद्भावे खलु धर्मभाव उत्पद्यते।

परन्तु, धर्मात्मा पुरुषोंकी सङ्गति करने पर स्वयंको पूर्णशक्तिमय श्रद्धान करके अपने आपमें स्थिरताको प्राप्त करेंगे, क्योंकि ज्ञानीके स्वरूपके उपयोग होने पर ज्ञानीकी संगति होती है। ज्ञानी पुरुषोंके देह वचन मनकी चेष्टाको देख कर उस चेष्टामें ही उपयोग करना भी तो अचेतनकी ही संगति है, अचेतन तत्वकी संगतिमें धर्मभाव उत्पन्न नहीं होता।

वस्तुतो हि न परवस्तूनि विषयाः न च रूपरसगंधस्पर्शशब्दादयो विषयाः संति। किन्तु परोन्मुखरागभावएव आत्मप्रदेशेष्ववस्थितत्वेन निजतत्त्वसंज्ञितत्वान्निमित्ताभावे स्वरूपनिर्माणासमर्थत्वाद्विषमभावतामास्कन्दति। परद्रव्यं लक्षयित्वा प्राणी रागद्वेषौ विदधाति तत एव परपदार्थो बिषयः प्रकल्प्यते परलक्ष्यविधेरिष्टानिष्टभावानामेव विषयत्वविनिश्चयात्। यतोहि ज्ञानभावेन परद्रव्यज्ञप्तिर्हि परद्रव्यस्य ज्ञेयत्वम्। रागद्वेषपूर्विका परद्रव्यविज्ञप्तिर्हि परद्रव्यस्य विषयत्वम्।

वास्तवमें पर पदार्थ विषय नहीं है और न रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदिक भी विषय हैं। किन्तु, परकी ओर उन्मुख हुआ राग भाव ही जो कि आत्मप्रदेशोंमें ही अवस्थित होनेसे निज तत्त्वसे संज्ञित है तथा निमित्तका अभाव होनेपर अपने स्वरूपका निर्माण करनेमें असमर्थ है ऐसा रागभाव ही विषमभावताको अथवा विषयभावपनेको प्राप्त होता है। पर द्रव्यका लक्ष्य करके प्राणी रागद्वेषोंको करता है, इस कारणसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही पर पदार्थ विषयभूत माना जाता है, वास्तवमें तो परका लक्ष्य करनेसे होनेवाले इष्ट और अनिष्ट भावोंके ही विषयपना निश्चित है। क्योंकि, ज्ञानभावके द्वारा पर द्रव्यके विषयमें ज्ञप्ति (जानना) होना सो ही तो पर द्रव्यका ज्ञेयत्व कहा जाता है और राग द्वेषपूर्वक पर द्रव्यके विषयमें विज्ञप्ति होना सो परद्रव्यका विषयपना (पर द्रव्य विषय है ऐसा) कहा जाता है।

इत्थं निजवस्तु विस्मृत्य परवस्तुमोहभावेन संजाततृष्णो मुग्धो वाह्ये सुखमन्वेषयति परं बाह्यानामर्थाणामनंतत्वं ततस्तृष्णाया अप्यनन्तत्वात्तत्र न समादधानो महतीमाकुलतां लभते।

इस प्रकार निज वस्तुको भूलकर पर वस्तुके मोहभावसे उत्पन्न हुई है तृष्णा जिसके ऐसा होता हुआ मुग्ध प्राणी बाह्य विषयमें सुख खोजता है किन्तु बाह्य पदार्थ तो अनन्त हैं इस कारणसे तृष्णा भी अनन्त है सो उस बाह्य परिकरमें व तृष्णामें समाधान न पाता हुआ वह महती आकुलताको ही प्राप्त करता है।

अतः भो मुमुक्षो ! यदि सत्सुखदिदृक्षा वर्तते तर्हि प्रथममेव पर्यायबुद्धिसंगतिं विहाय निजशुद्धात्मसंवेदनसमरसाधिकारि-संगतिं विधाय सर्वारम्भेण सर्वपरलक्ष्यं निजलक्ष्य-बलेन त्यक्त्वा विरम।

इसलिये हे मुमुक्षो ! यदि उत्तम सुख देखनेकी इच्छा है तो पहिले ही पर्यायबुद्धिवाले पुरुषोंकी संगतिको छोड़कर निजशुद्धात्मसंवेदनरूपी समरसके अधिकारी अन्तरात्माओंकी संगतिको करके समस्त प्रयत्नसे समस्त पर लक्ष्यको निजलक्ष्यके बलसे त्याग कर विश्राम करो।

अथ पदव्याख्या क्रियते—सव्वस्सवि-सर्वस्यापि-एकेन्द्रिय जीवादारभ्य संज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्तस्य संसारिणो जीवस्य। नन्वे-केन्द्रियजीवस्य केवलस्पर्शनेन्द्रियाधिष्ठातृत्वात्ततोन्येषाममनस्क-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचेन्द्रियपर्यन्तानां च मनसोभावात्कथं कामभोगबंधकथा प्रवर्तताम् तेषामिति चेदुच्यते कामभोगकथायाः फलं दुःखमेव दुःखस्य च तव विद्यमानत्वात् कारणता गर्भितैवेति। सर्वस्येति बचने जीवसमासापेक्षया सर्वेषां गुणस्थानापेक्षया मुख्यतया मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्तिनां वा प्रमत्तान्तानां च ग्रहणम्।

अब पदोंकी व्याख्या की जाती है :—

सव्वस्स वि:—सब संसारी प्राणीके, एकेन्द्रिय जीवसे लेकर संज्ञी पञ्चेद्रिय पर्यन्त संसारी जीवके। यह सव्वस्सवि का अर्थ हुआ।

प्रश्न—एकेन्द्रिय जीव तो सिर्फ स्पर्शनइन्द्रियका अधिष्ठाता है और इसके सिवाय अन्य द्वीन्द्रियादिक असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके भी मन नहीं है तो इन सबके मनका अभाव होनेसे कैसे कामभोगबन्ध की कथा प्रवर्तित हो सकती हैं ?

उत्तर—कामभोगबन्धकी कथाका फल दुःख ही है और दुःख उन एकेन्द्रियादिक जीवोंमें है ही सो कारणपना अर्थात् कामभोगबन्धकी कथा गर्भित ही है।

कामभोगबंधकथा :—कामश्च भोगश्च बंधश्चेति कामभोगबधास्तेषां कथा कामभोगबंधकथा। अथवा कामश्च भोगश्च कामभोगौ तयोर्बंधःसंबन्धस्तस्य कथा। अत्र कामशब्देन च स्पर्शनरसनेन्द्रियविषयो गृह्यते, अथवा अहंकरोमीतिकर्तृत्वभाव आहोस्विदिच्छा विषयो वेद्यभावो वा गृह्यते। भोगशब्देन च घ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियविषयो भोक्तृत्वभाव इंन्द्रियानुभवनविषयी वेदकभावो वा गृह्यते। बंधशब्देन च कर्मबंधस्तत्फलं च गृह्यते। तेषां तयोर्विषयिनी वा कथा कामभोगबंधकथा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामभोगबन्धकथा :—काम, भोग और बन्ध इन तीनों का समास हुआ कामभोगबन्ध और इनकी कथाको कहते हैं कामभोगबन्धकथा। अथवा काम और भोग का समास हुआ कामभोग उनके बन्धकी अर्थात् सम्बन्धकी कथाको कहते हैं कामभोगबन्धकथा। यहाँ काम शब्दसे स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियोंका विषय ग्रहण किया जाता है अथवा मैं करता हूँ इस प्रकारका कर्तृत्वभाव ग्रहण किया जाता है अथवा इच्छाका विषय व वेद्यभाव ग्रहण किया जाता है। भोग शब्द से घ्राण, चक्षु व श्रोत्र इन तीन इन्द्रियोंका विषय ग्रहण किया जाता है अथवा भोक्तृत्वभाव ग्रहण किया जाता है अथवा इन्द्रियोके अनुभवनका विषयी वेदकभाव ग्रहण किया जाता है। उन तीनोंकी कथा को अथवा उन दोनोंके (काम व भोग) विषयकी कथाको कामभोगबन्धकथा कहते हैं।

सुदपरिचिदाणुभूदा :—वैशिष्ट्यक्रमतः श्रुतपरिचितानुभूतशब्दानामत्र न्यासः। तत्त्वं पूर्वं श्रूयते पश्चात्परिचीयते पश्चादनुभूयते च। श्रवणस्य अन्तिमेन्द्रियेण सम्बन्धः परिचयस्य मनसा सम्बन्धोनुभवस्य चात्मना सम्बन्धः।

सुदपरिचिदाणुभूदा :—यहाँ विशेषताके क्रमसे श्रुत, परिचित व अनुभूत शब्दोंका इस क्रमसे ग्रहण किया गया है। तत्त्व पहिले सुना जाता है, अनन्तर परिचयमें आता है और फिर पीछे अनुभवमें आता है। सुननेका अन्तिम इन्द्रियसे सम्बन्ध है और अनुभवका आत्माके साथ सम्बन्ध है।

णवरि :—किन्तुः अथवा विशेषवृत्तमिदम्।

णवरि :—नवरि, किन्तु, अथवा विशेषवात यह है।

एयत्तस्स :—एकत्वस्य स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतस्य केवलस्य।

एयत्तस्स :—एकत्वस्य, अपने शुद्धगुण पर्यायमें परिणतके, केवलके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभत्तस्स :—विभक्तस्य, इतरसकलद्रव्येभ्यः इतरसकलद्रव्यगुणेभ्यः इतरसकलद्रव्यपरिणतिभ्यः भिन्नस्य । तथा चोपाधिजपरिणमनेभ्योपूर्णविकासेभ्यो भिन्नस्य निजासाधारणस्वभावे प्राप्तस्येति विभत्तस्स तात्पर्यम् ।

(इस प्रकार का कुछ प्रेसमेटर खो गया है ।)

विभत्तस्स :—विभत्तस्स, अन्य सव द्रव्योंसे, अन्य सव द्रव्योंके गुणोंसे व अन्य सकल द्रव्योंके परिणमनोंसे भिन्न का, तथा उपाधिसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे व अपूर्व विकासोंसे भिन्नका, निज असाधारणभावमें प्राप्तका, यह सव विभक्तका तात्पर्य हुआ ।

(इस प्रकरणका कुछ प्रेस मेटर खोगया है ।)

उपलंभो ण सुलहो—उपलब्धिः ज्ञातृत्वस्थित्या भवनद्वारेण ज्ञानमयस्वशुद्धात्मद्रव्यस्य ज्ञप्तिः न सुलभः अनादितोविद्यासंस्कारवशात् पर्यायबुद्धित्वेन स्वस्यापरिज्ञानात् तस्मादेव च मानकषायवशतश्चात्मज्ञानिनामुपासनस्य परिणामाभावात्, अन्तर्वाह्यसाधनयोगस्याभावात् ।

उपलंभो ण सुलहो :—उपलब्धि अर्थात् ज्ञातापनकी स्थितिसे रहनेरूप द्वारसे ज्ञानमय निजशुद्धात्मद्रव्यकी ज्ञप्ति (जानना) सुलभ नहीं है, क्योंकि अनादिकालसे अज्ञानसंस्कारवश पर्यायबुद्धि होनेके कारण इस संसारी प्राणीको निजका परिज्ञान नहीं है और इसही कारण मानकषायके वशसे आत्मज्ञानियोंकी उपासनाका परिणाम भी नहीं है जिससे अन्तरङ्ग व वहिरङ्ग साधनके योगका भी अभाव है ।

इदमत्र तात्पर्यम्—इह सर्वस्यापि जन्तोःकर्मपरवशानामहितानां क्लेशपूर्णानां कामभोगानां सम्बन्धिनी कथा परकीयापि परमूढत्वात्सरला मता किन्तु-इदं सर्वपर्यायेष्वनुगतं स्वत्वमन्तःप्रकाशमानमपि कषायानुरंजितोपयोगत्वात् श्रुतमपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न परिचितमपि न, अनुभूतत्वस्य नु कथव का। ततो हे आत्मन् पुण्यपापविपाकरूपसर्वजगतो मे न हितम् अहं हि रागादिरहितः शुद्धदर्शनज्ञानसामान्यस्वभावः न किल केनचिदपि सम्बद्धः किन्तु स्वतंत्रः पूर्णोस्मीति श्रद्धामृतशीतजलेन मिथ्यात्वरागादिवह्निसमुत्पन्नसंसारदुःखदाहमुपशम। नात्र स्वैकत्वलक्षणनिजनैर्मल्यातिरिक्तः कश्चन ते शरणम्।

यहाँ यह तात्पर्य है :—इस लोकमें समस्त जन्तुवोंके काम भोग सम्बन्धी कथा जो कि कर्मपरवश है, अहित है व क्लेशपूर्ण है, परकीय होनेपर भी परमें मुग्ध होनेके कारण सरल मानी हुई है, किन्तु यह निज तत्त्व जो कि सर्व पर्यायोंमें अनुगत है अन्तः प्रकाशमान है तो भी कषायोंसे अनुरञ्जित उपयोग होनेसे सुना भी नहीं है, परिचयमें आया हुआ भी नहीं है, अनुभवकी तो कथा ही क्या, वह तो दूर ही है। इस कारण हे आत्मन्! "पुण्यपापविपाकरूप सर्व जगतसे मेरा कोई हित नहीं है, मैं तो रागादिरहित शुद्ध दर्शनज्ञानसामान्यस्वभाववाला हूँ, किसीभी परद्रव्यसे मैं सम्बद्ध नहीं हूँ किन्तु स्वतन्त्र एवं पूर्ण हूँ" इस श्रद्धामृतके शीत जलसे मिथ्यात्व रागादिरूप अग्निसे उत्पन्न संसारके दुःखोंके दाहको शमन करो। अपने एकत्वरूप निज निर्मलता के अतिरिक्त अन्य कोई भी तेरा शरण नहीं है।

भगवन् किनु तन्नैर्मल्यमेकत्वं च यन्मे शरणमिति श्रेयसे ये जिज्ञासवस्तान् प्रति परमकारुणिकः कुन्दकुन्दार्यः प्राह—

"हे भगवन्! वह निर्मलता और एकत्व क्या है जो मेरे को शरण है" इस प्रकार आत्मकल्याणके लिए जो जिज्ञासु हैं उनके प्रति परमकृपालु श्री कुन्दकुन्द आर्य कहते हैं—

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दायेज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एव किल स्वसंवेदनप्रत्यक्षो दृशिज्ञप्तिस्वभावरूपोहं सकलानेकांतात्मकार्थसार्थस्वरूपोद्भासिपरमागमाभ्यासजनित-ज्ञानमयेन स्वयमपास्तसमस्तमिथ्यामतिमोहिततर्कनिर्दोषामोघ-साधनावलम्बिनोद्विकसितावबोधरूपेण सहजशुद्धदर्शनज्ञान-स्वभावात्मतत्त्वश्रद्धानावबोधाचरणरूपाभेदरत्नत्रयस्पर्शिनिर्म-लोपयोगपरिणतपरापरपरमगुरुभक्तिप्रसादोपलब्धशुद्धतत्त्वानु-शासनविभावितज्ञानमयेन आत्मस्वातन्त्र्यस्वभावावबोधसंपन्न-सकलेन्द्रियानिन्द्रियसंयमनजातसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्योप-योगस्यन्दिनिरूपमानन्दमयस्वसंवेदनप्रत्यक्षेणात्मनः स्वकीयेन विभवेन सर्वसाधारणानामसुलभत्वेन संकेतितं तं अभेदरत्न-त्रयैकपरिणतं समस्तपरद्रव्यपरभावविभक्तं दर्शयेयम् । यदि दर्शयेयम्—त्वदीयसहजतत्त्वावबोधविकासे निमित्तमात्रो भवे-यम् तदा सहजशुद्धानाद्यनंतचैतन्यस्वरूपोहमिति स्वीकारेण समं समं तव प्रमाणं स्यात् । शब्दानां शब्दमयत्वात् वस्तुतश्च स्वभावमयत्वान्नियतसंबंधाभावतः सीमितशब्दद्वारेणासीमित-वस्तुयाथात्म्यप्रकाशने स्खलेयम् तदा स्वघातिस्वापोहनभाव-मयं छलं न गृहीतव्यम् ।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥५॥

यह स्वसंवेदनप्रत्यक्षभूत दृशिज्ञप्तिस्वभावरूप मैं आत्मीय अपने विभवके द्वारा सर्वसाधारणोंको सुलभ न होनेके कारण मात्र संकेत किये गये उस अभेदरत्नत्रयमें ही एक रूप परिणत समस्त परद्रव्योंसे व परभावोंसे विविक्त एकत्वविभक्त आत्मतत्त्वको दिखाऊँगा ।

कैसा है श्री कुन्दकुन्दाचार्यका वैभव ?—(१) समस्त अनेकान्तात्मक पदार्थसमूहके स्वरूपको प्रगट करनेवाले परमागमके अभ्याससे उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानमय वैभव है, (२) स्वयं नष्ट हो गए हैं मिथ्याबुद्धिसे मोहित तर्क जिसमें ऐसे निर्दोष अमोघ युक्तियोंका साधनोंका अवलम्बन करने वाले उत्कृष्ट विकसित अववोध रूपी वैभव है, (३) सहजशुद्ध दर्शन ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वके श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप अभेद रत्नत्रयका स्पर्श करने वाले निर्मल उपयोगमें परिणत पर अपर परमगुरुवोंकी भक्तिके प्रसादसे प्राप्त हुए शुद्ध तत्त्वके अनुशासन (उपदेशन) से विशेषरूपसे प्रकट ज्ञानमय वैभव है, (४) आत्माके स्वातन्त्र्य स्वभाव के अववोधसे सम्पन्न एवं समस्त इन्द्रिय व मनके संयमसे उत्पन्न जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी एकाग्रतामें उपयोग है उससे झरने वाले (प्रकट होने वाले) उपमारहित आनन्दमें तन्मय स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप वैभव है। (ऐसे आत्मवैभवके द्वारा श्री कुन्दकुन्दाचार्य एकत्वविभक्त आत्माको दिखानेका संकल्प कर रहे हैं)।

यदि दिखा दूं अर्थात् तुम्हारें ही सहज तत्त्वके अववोधके विकास में निमित्तिमात्र हो जाऊँ तो "सहज शुद्ध अनन्त चैतन्यस्वरूप मैं हूँ" इस प्रकारके स्वीकारके साथ तुम्हारे वह आत्मदर्शन प्रमाण होवे। तथा शब्द तो शब्दमय हैं और वास्तवमें तो शब्द अपने (पुद्गल) स्वभावमय हैं आत्मा आत्मस्वभावमय है सो इनमें कोई नियत सम्बन्ध नहीं है इस कारणसे सीमित शब्दोंके द्वारा असीमित वस्तुका यथार्थस्वरूप प्रकट करनेमें चूक जाऊँ तो अपने आपका ही घात करनेवाला जो आत्माको छोड़ देनेके भावरूप छल है उसे ग्रहण नहीं करना अर्थात् ऐसा भाव नहीं करना कि आत्मा कुछ नहीं है, फिर आननेकी कोशिश करना।

वस्तुतो हि न कश्चित् कंचिद्विज्ञापयितुं समर्थोन्यद्रव्यपरिणतिमन्यद्रव्येण कर्तुमशक्यत्वादिति वस्तुस्वातंत्र्यं सम्यग्विजानतोप्यार्यस्य पात्रान् प्रतिपादयितुं स्वचेष्टाचेष्टितस्य शुभोपयोगपरिणत्या संगच्छमानं शुद्धोपयोगोद्भासित्वं स्वतः प्रसिद्धचति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"वास्तवमें तो कोई भी जीव किसी दूसरे जीवको समझानेमें समर्थ नहीं है क्योंकि अन्य द्रव्यकी परिणति अन्य द्रव्यके द्वारा की नहीं जा सकती" इस प्रकार वस्तुकी स्वतन्त्रताको अच्छी तरहसे जाननेवाले आचार्यके व पात्रोंको (योग्य पुरुषों को) समझानेके लिए अपनी चेष्टा से चेष्टित आचार्यके शुभोपयोगकी परिणतिके साथ चलनेवाला शुद्धोपयोगका विकास स्वतः प्रसिद्ध हो रहा है, जाहिर हो रहा है।

यद्यप्यात्मात्मन्येव प्रवर्तते वाणी च वाण्यां प्रवर्तते पृथग्द्रव्यत्वात्तथाप्यत्रात्मोत्साहस्य वाण्याश्चानुपमनिमित्तनैमित्तिकता जाता यतः संसारसागरे निमज्जतोत्यासन्नभव्यस्य परमालम्बनभूतशुद्धहिततत्त्वप्रकाशको ग्रन्थोयं सम्पन्नः।

यद्यपि आत्मा आत्मामें ही प्रवर्तित है और वाणी वाणीमें ही प्रवर्तित है क्योंकि वे सब पृथक पृथक द्रव्य हैं, तो भी यहाँ आत्माके उत्साहका और वाणीका अनुपम निमित्तिनैमित्तिक भावका मेल हुआ है जिससे संसारसागरमें डुबते हुए निकट भव्यजीवोंके परम आलम्बनभूत शुद्ध हित तत्त्वका प्रकाश करनेवाला यह ग्रन्थ सम्पन्न हुआ है।

अत्र ग्रन्थे विधिनिषेधद्वारेण शुद्धात्मत्वं प्रतिपादयिष्यते। तद्विधेरप्यनेकान्तमुद्रामुद्रितत्वात्प्रमाणीभूतत्वात्तद्वाच्यस्य च तत एव प्रमाणीभूतत्वात्तच्छुद्धात्मत्वं सर्वहितकारि इति। यतः सर्वमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्।

इस ग्रन्थमे विधि व निषेधके द्वारा शुद्धात्मतत्त्व प्रतिपादित किया जावेगा। उस शुद्धात्मतत्त्वका कथन भी अनेकान्तकी मुद्रासे मुद्रित होनेके कारण प्रमाणीभूत है और उसका वाच्य शुद्धात्मतत्त्व भी इसी कारण प्रमाणीभूत है; अतः शुद्धात्मतत्त्व सर्व जीवोंका हितकारी है।

वस्तु हि स्वद्रव्येण स्वक्षेत्रेण स्वकालेन स्वभावेनास्ति परद्रव्येण परक्षेत्रेण परकालेन परभावेन नास्ति। अत्रास्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वमपि चतुष्टयापेक्षयानंतगुणपर्यायापेक्षयानन्तत्वविशिष्टत्वं तथा नास्तित्वमपि वस्त्वनुजीविगुणातिरिक्तानंतपरद्रव्यापेक्षया ततोप्यधिकमनंतविशिष्टत्वम्। एवमेव नित्यानित्यकानेकाद्य-नंतव्यक्ताव्यक्तधर्मविशिष्टत्वं वस्तुतः प्रसिद्ध्यति। किमन्यत् एकान्तदुरभिनिवेशग्राहिण आत्मनोप्यनेकान्तात्मत्वम् सत्त्वात् वस्तुनो विविधगुणधर्माणां वसनशीलत्वात्।

और भी क्या—समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं, सत्त्व होनेसे अर्थात् वे हैं इस कारण अनेकान्तात्मक ही हैं। वास्तवमें पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे हैं परके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे नहीं हैं। यहां चतुष्टयकी अपेक्षासे अस्तित्व भी अनन्त गुण पर्यायकी दृष्टिसे अनन्त-पनेसे सहित है तथा नास्तित्व भी वस्तुके अनुजीवी गुणोंके अतिरिक्त जो अनन्त पर द्रव्य उनकी अपेक्षासे उससे (चतुष्टयास्तित्वसे) भी अनन्त हैं। इसी प्रकार ही वास्तवमें नित्य अनित्य एक अनेक आदि अनन्त व्यक्त और अव्यक्त धर्मोंसे युक्तता प्रसिद्ध होती है अर्थात् प्रसिद्ध है।

और तो क्या, एकान्तके मिथ्या अभिप्रायको ग्रहण करनेवाले आत्माके भी अनेकान्तात्मकता है, क्योंकि सत्त्व होनेसे तथा वस्तुमें नाना प्रकारके गुण और धर्मोंके रहनेका स्वभाव होनेसे।

अब तमनेकान्तात्मकमनेकान्तात्मिकवाण्यानेकान्तमूर्तिर-नेकान्तात्मकान् पात्रान् प्रत्याह।

यहाँ अनेकान्तमूर्ति आर्य पुरुष अनेकान्तात्मक पात्रोंके लिये उस अनेकान्तात्मक एकत्वविभक्त आत्मतत्त्वको अनेकान्तात्मक वाणी द्वारा कह रहे हैं।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

अब पदोंकी व्याख्या की जाती है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं पूर्वप्रकरणसंकेतितमवोधानामव्यक्तं सद्बोधचक्षुषां व्यक्तमनुभवसमयेनुभूयमानत्वात्स्मरणविषयमनुभवानन्तरं स्मृतिविषयरूपं सम्यग्ज्ञायमानमपीतरजनं प्रत्यक्षेण दर्शयितुमशक्तिविषयं तमिममिति भावः।

तं—पूर्व प्रकरणमें संकेत किये गये, अज्ञानियोंको अप्रकट, सम्यग्ज्ञान नेत्रवालोंको प्रकट, अनुभवके समयमें अनुभूयमान तत्त्वके स्मरणका अविषयभूत, अनुभवके अनन्तर स्मरणका विषयरूप, भले प्रकार ज्ञायमान होनेपर भी अन्य जनोंको प्रत्यक्षसे दिखाये जानेके लिये अशक्य ऐसे उस एकत्वविभक्त आत्माको। यह तं का तात्पर्य हुआ।

एयत्त—एकत्वमयमनाद्यनन्तस्वसहायाखण्डचैतन्यमयं तदेकत्वभावनाबलप्रविजृम्भितसहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वस्थैर्यरूपाभेदरत्नत्रयैकपरिणतं कारणसमयसाररूपं कार्यसमयसाररूपं वा परमात्मस्वरूपम्। एतेनात्मनः ज्ञानादिगुणशून्यत्व–पञ्चभूतोपज्ञायमानत्वप्रभृतिप्रकल्पना निरस्ताः।

एयत्त—एकत्वमयको। अनादि अनन्त स्वसहाय अखण्ड चैतन्यमय व उस आत्मतत्त्वके एकत्वकी भावनाके बलसे विकसित सहज शुद्ध दर्शन ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वकी स्थिरतारूप अभेद रत्नत्रयमें एक परिणत कारणसमयसाररूप अथवा कार्यसमयसाररूप परमात्मस्वरूपको। (यह एयत्तका तात्पर्य है)। इस विशेषणके कारण "ज्ञानादिगुणसे शून्यपना व पाँच भूतोंसे आत्माकी उत्पत्ति होना आदि" कल्पनायें खण्डित हो जाती हैं।

विभत्तं—अनंतपरद्रव्यक्षेत्रपर्यायगुणविरहितं परोपाधिजस्त्रकाश्रयजमिथ्यात्वरागादिरहितं अकिञ्चनोहमिति बलवद्भावनाबलध्वस्तपरलक्ष्यभावनातर्कप्रकारीयशून्यस्थं मोहक्षोभरहितं निर्विकारजीवतत्त्वमिति भावः। एतेन सर्वार्थस्थैकपर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मत्वतिर्यक्सामान्यगतसर्वविवर्तमयैकसत्ताकत्वप्रभृति प्रकल्पना निरस्ताः।

विभत्तं—अनन्त पर पदार्थोंके द्रव्य क्षेत्र पर्याय व गुणोंसे रहित, पर पदार्थकी उपाधिसे जायमान व अपने आश्रयमें जायमान मिथ्यात्व रागादिभावोंसे रहित, मैं अकिञ्चन हूँ इस प्रकारकी बलवती भावनाके बलसे विध्वस्त हो गये परके लक्ष्य भावना तर्क जिसमें इस प्रकारके शून्यमें स्थित, मोह क्षोभसे रहित ऐसे निर्विकार जीव तत्त्वको। (यह विभत्तं का भाव है)। इस विशेषणसे "सर्व पदार्थोंमें रहनेवाला एक परमात्मतत्त्व है न तिर्यक्सामान्यगत सर्वपर्यायोंमय एक ही सत् है" इत्यादि कल्पनायें निराकृत हो जाती हैं।

दाएहं—दर्शयेयम्—कर्तृत्वबुद्धिनिरसनपरः कर्तृत्वबुद्धिनिरसनपरग्रन्थप्रस्तावनायां कर्तृत्वाभासमयमिदं पदं मोहान्धविपन्नप्राणिगणपरमकरुणाप्रेरितस्य सम्यग्ज्ञानवत उपादानबलं घोषयति सर्वज्ञगदिततत्त्वस्य हृदयंगमत्वान्निःशंकः प्राहः आर्यः 'दर्शयेयम्' पश्यन्तं प्रेरयेयम् इति भावः यतो न खलु स्वयं स्वज्ञप्तिपरिणतिं विना परिणममानं दर्शयितुं निमित्तमात्रोपि कश्चित्। अहं कथयाभि पश्य पश्य इति विधिना दर्शयेयम्।

दाएहं—दिखाऊँगा—कर्तृत्वबुद्धिके निराकरण करनेमें समर्थ इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें कर्तृत्वबुद्धिके निराकरण करनेमें समर्थ कर्तृत्वाभासमय यह पद अर्थात् "दर्शयेयम्" यह पद मोहान्धकारसे विपन्न प्राणियोंके समूहपर परम करुणासे प्रेरित सम्यग्ज्ञानीके उपादानबलको घोषित करता है। सर्वज्ञकथित तत्त्व हृदयंगम होनेसे आचार्य देव निशङ्क कह रहे हैं कि "दिखाऊँगा" अर्थात् देखते हुए को प्रेरणा करूँगा। यह दाएहं का तात्पर्य है, क्योंकि स्वयं आत्मतत्त्वको जाननेकी परिणति किये बिना आत्मज्ञानरूप परिणमन न करनेवाले जीवको आत्मतत्त्व दिखानेके लिये कोई निमित्तमात्र भी नहीं हो सकता है। मैं कहता हूँ तुम देखो देखो इस विधिसे दिखाऊँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पणो सविहवेण—आगमतर्कगुरूपदेशस्वानुभवरूपेण आत्मनः स्वस्य विभवेन अतति गच्छति जानाति इति आत्मा तस्य। स्वविभवेन—भवतीति भवः विशेषेण भवतीति विभवः तेन। अत्र तीर्थंकरप्रकाशिततत्त्वमेव कथयामि नातत्त्वमिति अन्तर्भाववानपि निजवैभवबलस्वसंवेदनप्रत्यक्षगततत्त्वेन निःशंकः स्वयमुत्तरदायी प्रबलोपादानतत्त्वः श्रीमत्कुन्दकुन्दः प्राह—तं आत्मनः स्वविभवेन दर्शयेयम्। लोकनियमोयम् तावद्यद्वक्तर्य-प्रतीते तद्वचने लोकोपि न प्रवर्तते। नन्वेतन्मायाचरणमेव, तत्त्वं हि परापरगुरुप्रसादोपलब्धं वर्तते परमत्र 'स्वविभवेन' निगद्यते, तन्न यतः पूर्वमेव वंदितु इत्यादि गाथायां 'सुदकेवली-भणिदं' इति पदेन स्वकर्तृत्वनिरसनात्। अत्र तु साक्षाद्वक्त-व्यप्रकरणे स्वस्य प्रमाणतां बिना श्रोतृणामत्राप्रवृत्तेः परम-करुणया स्वानुभूततत्त्वप्रकाशने शङ्काविरहितः स्वविभवबलं प्रदर्शयन्नाचार्यः प्राह। अप्पणो सविहवेण दर्शयेयम्। साक्षा-द्वचनालापकाले सर्वज्ञगदितमस्तीति पुनः पुनः वचने तर्कगुरू-पदेशस्वानुभवविहीनताप्रतीतेः श्रोतुस्तत्त्वाचरणरूपादरस्य दुर्लभत्वात्।

अप्पणो सविहवेण—आगम, युक्तियाँ, गुरुके उपदेश व स्वानुभवके रूपसे अपने आपके आत्माके विभवसे जो अतति अर्थात् जाता है जानता है वह आत्मा है उसके अपने वैभवसे (दिखाऊँगा)। विभवका निरुक्त्यर्थ यह है—जो होवे सो भव और जो विशेषरूपसे हो सो विभव। (विभव के द्वारा दिखाऊँगा)। यहाँ तीर्थङ्करदेवसे प्रकाशित हुए तत्त्वको ही कहता हूँ अतत्त्वको नहीं कहता हूँ इस प्रकारके अन्तरङ्ग भाव वाले होते हुए भी (आचार्य) अपने आत्मवैभवके बलसे स्वसंवेदन प्रत्यक्षमें तत्त्व आजानेके कारण निःशङ्क होकर स्वयं अधिकारी व जुम्मेदार होते हुए प्रबल है उपादान तत्त्व जिसका ऐसे श्रीमत्कुन्दकुन्द आचार्यदेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह रहे हैं कि—उस आत्मतत्त्वको अपने वैभवके द्वारा दिखाऊँगा। लोकमें यह नियम है कि वक्ताके विश्वस्त न होनेपर उस वक्ताके वचनमें भी लोक प्रवर्तित नहीं होते हैं। (इसलिये "अप्पणो विहवेण" शब्दों द्वारा लोकोंको विश्वास उत्पन्न हो गया है)। यहाँ शंकाकार कहता है कि—यह तो मायाचार हो गया, कैसा, कि तत्व तो पर अपर गुरुके प्रसादसे प्राप्त हुआ है और यहाँ कहा जा रहा है कि अपने वैभवके द्वारा कहा जा रहा है। उत्तर—यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि पहले "वंदित्तु सव्वसिद्धे" इत्यादि गाथामें "सुदकेवली भणिदं" इस पदके द्वारा अपने आपके कर्तृत्वका निराकरण आचार्य देव ने कर ही दिया है। यहाँ तो साक्षात् वक्तव्यके प्रकरणमें अपनी प्रमाणताके बिना श्रोताओंकी इस आत्मतत्त्वकी कथा सुनने और माननेमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती है इस कारण परम करुणासे स्वके अनुभूत तत्त्वके प्रकाशन करनेमें शङ्कारहित होते हुए अपने विभवके बलको दिखाते हुए आचार्य कहते हैं—अपने आत्मवैभवके द्वारा दिखाऊँगा। क्योंकि साक्षात् वचनालापके समय "यह सर्वज्ञदेवके द्वारा प्रकट किया हुआ है" ऐसा बार बार कहनेपर श्रोताको यह प्रतीति हो जावेगी कि वक्ता तर्कसे गुरूपदेश प्राप्तिसे व स्वानुभवसे रहित है और ऐसी प्रतीति हो जानेपर श्रोताके तत्त्वपर झुकाव होनेरूप आदर होना दुर्लभ हो जायगा।

जदि दाएज्ज—यद्यहं तद्धितं शुद्धात्मतत्त्वं दर्शयेयं अत्र समाधिभावनाभीक्ष्णोपयोगस्याध्यात्मयोगिनो वक्तुरेतद्वचनचक्रस्थस्य परमकरुणास्वचेष्टामात्रकर्तृत्वप्रकाशनेन स्वतंत्रता प्रसिद्ध्यति। प्रवक्तरि ह्यखण्डनिजचैतन्ययाथात्म्यश्रद्धोपादानबलं समस्ति समकं च प्ररूपणभावोपि ताभ्यां सह च वाणियोगोपि विद्यते। नात्राचार्यमनसि शङ्का किंतु शङ्काशीलानां श्रोतॄणां शङ्कापनुदेत्तथा स्वबलप्रदर्शनेन 'यदि दर्शयेयम्' इति शैल्यायं: प्रतिपादयति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जदि दाएज्ज—यदि मैं हितरूप उस शुद्धात्मतत्त्वको दिखा दूं—यहाँ समाधिभावनामें निरन्तर है उपयोग जिसके किन्तु वर्तमानमें इस अध्यात्मवाणीके चक्रमें स्थित हैं ऐसे अध्यात्मयोगी वक्ताकी परम करुणामय अपनी चेष्टामात्रके कर्तृत्वके प्रकाशन द्वारा स्वतन्त्रता प्रसिद्ध हो रही है। प्रवक्तामें अखण्ड निज चैतन्यस्वभावकी यथार्थ श्रद्धाके उपादानका बल है और साथ ही उस तत्त्वके प्ररूपण करनेका भाव भी है सो उन दोनोंके साथ यह वाणीका योग भी हो रहा है। यहाँ आचार्यके मनमें शङ्का नहीं है किन्तु जिस तरह शङ्काशील श्रोताओंकी शंका दूर हो जाय इस तरह अपने बलके प्रदर्शन द्वारा "यदि दिखा दूं" इस शैलीसे आचार्य प्रतिपादन करते हैं।

पमाणं—प्रमाणीकर्तव्यम् — संशयविपर्ययानध्यवसायरहितानुभवपूर्वनिजज्ञानपरिणत्या प्रमाणीकर्त्तव्यम्। कथनमात्रेण न स्वीकर्तव्यम् तथैव स्वीकरणे स्वोपादानवलव्यक्त्यभावे मोहरागद्वेषशून्यज्ञातृत्वलक्षणाभीष्टपदानुपलब्धेः। अत्र श्रोतृणां स्वतन्त्रता प्रसिद्ध्यति न किंचिद्घटत्वं यत्रेदं तत्त्वं स्वीकुरुतैव। कुतः स्वज्ञानपरिणतिं बिना स्वीकारताया अशक्यत्वात् स्वज्ञप्तिपरिणतौ च स्वीकारता-निरोधस्याशक्यत्वात्।

पमाणं—प्रमाण करना चाहिये अर्थात् यदि उस आत्मतत्त्वको दिखा दूं तो प्रमाण कर लेना चाहिये। संशय विपर्यय अनध्यवसाय रहित अनुभवपूर्वक निज ज्ञानकी परिणतिसे प्रमाण कर लेना चाहिये। मेरे कहनेमात्रसे ही नहीं स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि कहनेमात्र पर ही स्वीकार कर लेने में अपने उपादानके बलकी व्यक्ति (प्रकटता) के अभाव होनेपर मोहरागद्वेषरहित ज्ञातृत्वमात्र लक्षणवाले अभीष्ट पद (अन्तरात्मत्व पद) की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ श्रोताओंकी स्वतन्त्रता प्रसिद्ध हो रही है जहाँ जरा भी हठ नहीं है कि इस तत्त्वको स्वीकार कर ही लो। इसका कारण यह है कि ज्ञानपरिणमन बिना स्वीकारता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी तो अशक्य है और आत्मज्ञानकी परिणति होनेपर स्वीकारताकी रुकावट होना अशक्य है।

चुक्किज्ज—यदि स्खलेयम्—प्रदर्शनतश्च्युतो भवेयम्। अयमस्य भावः निश्चयतस्तत्वमवक्तव्यं वर्तते वस्तुतो निजानुभूतिकल्पनां विना शब्दार्थयोः वाच्यवाचकसंबंधाभावात् अविनाभावसंबंधानुपलब्धेश्च। तत एव चार्थप्रकाशे शब्दस्य व्यभिचारित्वम्। नात्राचार्यस्य शुद्धतत्त्वावबोधाभावः प्रकाशनसामर्थ्याभावो वा आहोस्वित्काचिच्छंका किन्तु अननुभूततत्त्वानां अश्रुतपरिचिततत्त्वानां च संकेतग्रहणाभ्यासाभावेन साफल्यसंदेहः। श्रोतुरिदमपराधत्वं स्वस्योपरि विनियोज्यार्यः प्रगदति "यदि स्खलेयम्"। लोकेपि दृश्यते केनचिद्विज्ञानिना सत्पुरुषेण बहुशः प्रतिबोध्यमानोपि यदि न मन्येत तर्हि स विज्ञानी प्रणिगदति यदहं स्वकीयभावस्य प्रकाशनेशक्त इति।

चुक्किज्ज—यदि चूक जाऊँ—तत्त्व दिखानेसे च्युत हो जाऊँ। इसका यह भाव है कि निश्चयसे तो तत्त्व अवक्तव्य है, वास्तवमें निजकी अनुभूतिकी कल्पनाके बिना, शब्द और अर्थमें वाच्य वाचक सम्बन्ध न होनेके कारण अविनाभाव सम्बन्ध नहीं बन सकता। इस ही कारण अर्थका प्रकाश करनेमें शब्द व्यभिचारी हो जाता है अर्थात् शब्द अर्थ प्रकट कर दे ऐसा नियम नहीं बनता। यहाँ पर आचार्यके शुद्ध तत्त्वके ज्ञानका अभाव नहीं है अथवा तत्त्वप्रकाशनकी सामर्थ्यका अभाव नहीं है अथवा तत्त्वमें कोई शंका भी नहीं है, किन्तु जिन्होंने तत्त्वका अनुभव नहीं किया ऐसे अथवा जिन्होंने तत्त्वको न सुना न पहिचाना ऐसे पुरुषोंके संकेत ग्रहणका अभ्यास न होनेसे वहाँ सफलतामें संदेह है। श्रोताके इस अपराधत्वको अपने ऊपर लगा कर आचार्य देव कहते हैं कि "यदि चूक जाऊँ"। लोकमें भी देखा जाता है कि किसी विशेषज्ञ सत्पुरुषके द्वारा बहुत बार समझाया गया भी यदि नहीं माने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो वह विशेषज्ञ कहता है कि मैं अपने भावके प्रकट करनेमें असमर्थ रहा।

छलं ण घेत्तव्वं—स भावो न गृहीतव्यः यः स्वं छादयेत् छलेत्। अथवा नयानां वहुत्वात् वस्तुनोनेकान्तात्मकत्वात् शब्दसंगतौ अपेक्षावादे च सहयोग एव कर्तव्यः दोषदृष्टिर्न गृहीतव्या यदत्र पूर्वमिदं भणितमत्र पुनरिदं भण्यते। अथवा शुद्धतत्त्वानवबोधे सति आत्मा न कश्चिदित्यादिरीत्या नास्तिक्यं न गृहीतव्यम् पुनरवगन्तुमुद्यमो विधेयः, यतो न्यायनयलक्षणाद्युपायैः स्वानुभवेन यन्निजतत्त्वं मया स्वसंवेदनप्रत्यक्षीकृतं तच्छ्रद्धानाववोधचरणमार्गेणैव त्वं सुखीभविष्यसि। अत्र श्रीमत्कुन्दकुन्दगुरोः श्रोतरि शिष्ये परमकारुण्यं प्रकटीभवति।

छलं ण घेत्तव्वं—वह भाव नहीं ग्रहण करना चाहिये जो अपने आपको छले। अथवा नय तो वहुत हैं और वस्तु अनेकान्तात्मक है अतः शब्दसंगतिमें और अपेक्षावादमें सहयोग ही करना चाहिए दोषदृष्टि नहीं ग्रहण करना चाहिए कि लो, यहाँ पहिले तो यह कहा था अब यह कहा जा रहा है। अथवा शुद्ध तत्त्वका ज्ञान न होनेपर "आत्मा कुछ भी नहीं है" इत्यादि रीतिसे नास्तिक्य भाव नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि युक्ति नय लक्षण आदि उपायोंसे व स्वानुभवसे जो निजतत्त्व मैंने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष किया है उसके श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप मार्गसे ही तुम सुखी होगे। यहाँ श्रीमत्कुन्दकुन्द गुरुकी श्रोता शिष्यपर परम करुणा प्रकट हो रही है।

इदमत्र तात्पर्यम्—अहं तत् पूर्वसंकेतितं स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतं अभेदरत्नत्रयैकपरिणतं निजेतरसकलार्थभिन्नं मोहरागद्वेषादिरहितं आत्मनः आगमतर्कगुरूपदेशस्वानुभवप्रसिद्धज्ञानवलेन त्वां दर्शयेयम् यदि शब्दद्वारैर्दर्शयेयम् तदा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयमेव स्वानुभवेन साकं प्रमाणीकर्तव्यम् यदि तत्प्रदर्शनकार्ये स्खलेयम् तदा छलं न गृहीतव्यम् ।

यहाँ यह तात्पर्य है—कि मैं उस पूर्व संकेतित, अपने शुद्ध गुण पर्यायमें परिणत, अभेदरत्नत्रयरूप परिणत, अपनेसे अन्य समस्त पदार्थों से भिन्न, मोहरागद्वेषादिरहित आत्मतत्त्वको आगम, तर्क, गुरूपदेश व स्वानुभवसे प्रसिद्ध अपने ज्ञानबलसे तुम्हें दिखाऊँगा। यदि शब्द-द्वारोंसे दिखादूं तो स्वयं ही अपने अनुभवके साथ प्रमाण कर लेना, यदि उस तत्त्वके प्रदर्शनके कार्यमें चूक जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना।

अथाचार्यदाढ्यं विज्ञाय स्वहितावसरं श्रद्दधानैर्महदुत्सुकतया जिज्ञासुभिः भव्यशिष्यैः कोयं शुद्धात्मेति पृष्ट इवार्यः प्राह :—

अब आचार्य देवकी दृढ़ताको जानकर अपने कल्याणके अवसरकी श्रद्धा करनेवाले व बड़ी उत्सुकतासे जाननेकी इच्छा रखनेवाले भव्य शिष्योंके द्वारा "यह शुद्धात्मा क्या है" इस प्रकार मानो पूंछे गये आचार्य देव कहते हैं—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव ॥६॥

यः किलायमात्मोत्पादात्ययध्रौव्यमयास्तित्वनिर्वृत्तिमानादिरनंतो सदान्तःप्रकाशमानः स्वसहायोखण्डः सकलपरिणामानुगतः परिणामविशेषरहितो ज्ञायकभावस्वरूपः स यद्यपि संसारपर्यायापेक्षयानादिप्रवाहबद्धकर्मनिमित्तमात्रत्वं प्राप्य स्वद्रव्यक्षेत्रभावपरिणत्या शुभाशुभभावैः परिणमते तथापि द्रव्यस्वभावापेक्षया परिणमनाभावान्न प्रमत्तो न चाप्रमत्तो भवति । किन्त्वशेषद्रव्यगुणपर्यायेभ्यो द्रव्यान्तरभावेभ्यो विभक्ततयारा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राध्यमानः शुद्ध एव दृश्यत इति शुद्धतत्त्ववेदिनो भणंति। न चात्र ज्ञायकस्य ज्ञानरूपेण परिणतत्वेन ज्ञानस्य च परविषयत्वात् परोपाधिमत्वमशुद्धत्वं तदापि स्वकीयानुपमशक्तियोगित्वात् तस्य तेनैव तत्परिणमनात्। ततोयं ज्ञाता यः शुद्धात्मा स ज्ञातव नान्यस्पर्शीतिभावः।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति शुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव ॥६॥

जो यह आतमा उत्पाद व्यय ध्रौव्यमय अस्तित्वसे रच रहा, अनादि, अनन्त, सदा अन्तः प्रकाशमान, स्वसहाय, अखण्ड, सकल पर्यायोंमें अनुगत किसी पर्यायविशेषमात्रसे रहित, ज्ञायकभावस्वरूप है वह यद्यपि संसार पर्यायकी अपेक्षासे अनादिप्रवाहवद्ध कर्मके निमित्तमात्रपनेको प्राप्त होकर अपने द्रव्य क्षेत्र भावकी परिणतिसे शुभ अशुभ भावोंसे परिणमता है तो भी द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे परिणमनका अभाव होनेसे न तो प्रमत्त है और न अप्रमत्त है। किन्तु, समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंसे व द्रव्यान्तरोंके निमित्तसे होनेवाले बिभावोंसे विभक्तरूप से आराध्यमान यह आत्मतत्त्व शुद्ध ही दिख रहा है इस प्रकार शुद्धतत्त्वके जाननेवाले सत्पुरुष कहते हैं।

यहां ज्ञायकभाव ज्ञानरूपसे परिणत हो गया और ज्ञान हुआ परविषयक सो परकी उपाधिरूप अशुद्धता ज्ञायकभावमें आ जायगी ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस समय भी अपनी ही अनुपम शक्तिके योगसे उस ज्ञायक आत्मतत्त्व का उसही से परिणमन हुआ है। इस कारण यह ज्ञाता जो शुद्धात्मा है वह ज्ञाता ही है, अन्य पदार्थसे स्पर्श किया गया व अन्य पदार्थको स्पर्श करनेवाला नहीं है। (यह इस गाथा का भाव है)।

अव प्रमत्ताप्रमत्तगुणयोः परिवर्तमान आचार्यो ज्ञानिनां दृष्टेरुच्चैस्तरत्वेन साधारणज्ञानिनामप्रमत्तादिनिरूपाधिपर्यायभिन्ननिजात्मबोधदौर्लभ्येन च निषेत्स्यमानयोः प्रमत्ताप्रमत्तयोः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रागप्रमत्तशब्दं निक्षिप्य निषेधयति—एष खल्वात्मा नाप्रमत्त: न च प्रमत्त इति, प्रमत्ताप्रमत्तावस्थयो: पर्यायरूपत्वात् ।

यहाँ प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थानमें परिवर्तन करते हुए रहनेवाले आचार्य प्रमत्त और अप्रमत्तमें से पहिले अप्रमत्त शब्दको रख कर निषेध करते हैं क्योंकि ज्ञानियोंकी दृष्टि अत्यन्त उच्च होती है और साधारण ज्ञानवालोंके अप्रमत्तादि निरूपाधिपर्यायोंसे भी परे जो निज आत्मतत्त्व का ज्ञान है उसकी दुर्लभता है। सो आचार्य अप्रमत्त शब्दको पहले रखकर इस प्रकार निषेध करते हैं कि—यह आत्मा न तो अप्रमत्त है और न प्रमत्त है, क्योंकि प्रमत्त व अप्रमत्त दोनों अवस्थायें पर्यायरूप हैं।

अनादिमिथ्यादृष्टिर्जीव: प्रकृत्या क्षयोपशमलब्धिप्राप्तस्तद्वशाद्विशुद्धो गुरूपदेशधारणसमर्थो विशुद्धतरपरिणामवशेन विहितान्त:कोटाकोटिकर्मस्थितिको भव्यत्वशक्तिविपाकवशादधोपूर्वानिवृत्तिकरणसंप्राप्तोन्तरकरणोपशमनविधानेन लब्धप्रथमोपशमसम्यक्त्व: पूर्वमनादिसंस्कारवशाच्छिथिलसम्यक्त्वो वा भवति तदनूद्वेलनाकालाभ्यान्तर एव सावधानो ध.करणापूर्वकरणद्वयं संप्राप्य वेदकसम्यग्दृष्टिर्भवति पुन अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणयो: क्षयोपशमात्करणद्वयेन प्राप्तसंयम आस्ते स चैवं श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य: शुद्धात्मतत्त्वोपयोगे स्थैर्यास्थैर्यवशात् प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयो: परिणतोबूबुभवत् । देवोसौ कृतिकर्मविकल्पेषु परकारुण्यविकल्पेषु यदा स्थितस्तदा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती यदा च निजशुद्धात्मतत्त्वान्त:स्थितावुपयुक्तस्तदा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती संजात: एवं द्वयोर्गुणयो: प्रवर्तमानस्य श्रीमत्कुन्दकुन्दार्यस्य परमकारुण्यवशेन शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादनोत्साहानुरूपं वाग्योगो बभूव सा चासौ वाणी हितरूपा सत्या च ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव पहले तो प्रकृत्या ही क्षयोपशम लब्धि को प्राप्त होता है जिसके कारण फिर विशुद्धपरिणामी होता हुआ गुरूपदेशको धारण करनेमें समर्थ होता है। फिर अतिविशुद्ध परिणामों के द्वारा उसके कर्मोंकी स्थिति सिर्फ अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति के रह जाते हैं। फिर भव्यत्वशक्तिके विपाकके वशमें अधःकरण, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणामोंको प्राप्त होता है। फिर अन्तर-करण व उपशमन करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। अथवा पूर्व अनादिसंस्कारके वशसे प्रथमोशम सम्यक्त्वसे च्युत होता है तो अनुद्वेलनाके कालके भीतर भी वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर अधःकरण अपूर्वकरण इन दो परिणामोंके द्वारा अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमसे संयमको प्राप्त करता है। सो ऐसे ही वे श्रीमत्कन्दकुन्दाचार्य शुद्ध आत्मतत्त्वके उपयोगमें स्थिरता व अस्थि-रताके वशसे प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें वार वार परिणत हो रहे थे। सो ये आचार्यदेव जब आवश्यक कर्तव्य क्रियावोंमें व परजीवोंके प्रति करुणाभावके विकल्पोंमें स्थित होते थे तब ये प्रमत्तगुणस्थानबर्ती होते थे और जब निज शुद्ध आत्मतत्त्वके अन्तः स्थितिमें उपयुक्त होते थे तब अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती होते थे इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंमें क्रमशः वार बार प्रवर्तमान हो रहे पूज्य श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवके परम करुणाके वशसे शुद्ध आत्मतत्त्वके प्रतिपादनमें उत्साहके अनुरूप वचनयोग हुआ था। वह वचन कल्याणस्वरूप एवं सत्य है।

नायमात्मा वर्तमानदशामात्रो शुद्धावस्थाया अशुद्धा-वस्थाया वा पर्यायरूपत्वेन क्षणिकत्वात्, केवलज्ञानिष्वपि प्रति-समयं शुद्धज्ञानव्यञ्जनाभिरनंतकालं परिणतत्वेपि प्रतिज्ञान-व्यञ्जनाया एकसमयस्थितिकत्वात्।

यह आत्मा वर्तमानदशामात्र नहीं है, क्योंकि वर्तमान सब दशायें चाहे वे शुद्ध अवस्थारूप हों या अशुद्ध अवस्थारूप हों पर्यायरूप होनेसे क्षणिक हैं। केवलज्ञानी भगवंतोंमें भी प्रतिसमय शुद्ध ज्ञानकी व्यञ्ज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नावों (आविर्भावों) से अनन्तकाल तक सदृश परिणमन होते रहनेपर भी वे प्रति ज्ञानव्यञ्जनायें एक एक समयकी स्थितिवाली ही हैं।

सर्वावस्था गौणीकृत्य यस्त्रिकालसामान्यस्वभावस्वरूपोहं स ज्ञायकभाव: स एवाहम्।

समस्त अवस्थावोंको गौण करके जो त्रिकाल सामान्यस्वभावरूप में हूँ वह ज्ञायकभाव है, वही में हूँ।

अनन्तानन्ता अणवो धर्मास्तिकायोधर्मास्तिकाय आकाशो-संख्येया: कालाणवश्च तेषां गुणा: सर्वपर्याया अचेतनाश्चेतना-श्च मदतिरिक्तसकलजीवा अत्यन्ताभावविशिष्टा: सर्वथा भिन्ना: सर्वेषां स्वकीयेषु स्वकीयेष्वेव परिणमानात्। तेभ्य: सर्वेभ्यो विविक्त: परोपाधिजत्वेन रागादिविकारेभ्यो विविक्तो भाव्यमानकेवलज्ञानादिशुद्धपर्यायेभ्योपि क्षणिकपर्यायत्वेन विविक्तो ज्ञानदर्शनादिगुणविकल्पभेदरहितोखण्डो ज्ञायक-स्वरूपोहं। क्षणिकावस्थानुपयुक्तो लक्ष्यीकृतैकाकिज्ञायकध्रुव-स्वभावस्तत्स्थिरो ज्ञातृस्वरूपोहम्।

अनन्तानन्त परमाणु, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, असंख्यात कालाणु और उन सबके गुण, उन सबकी पर्यायें, मेरे सिवाय बाकी समस्त जीव ये सब अचेतन व चेतन पदार्थ मुझसे अत्यन्त अभाव वाले हैं याने सर्वथा मुझसे भिन्न है; क्योंकि समस्त पदार्थ अपने अपने ही प्रदेशोंमें व गुणोंमें परिणमन करते रहते हैं। उन समस्त पर पदार्थोंसे पृथक् पर उपाधिको निमित्त पाकर उत्पन्न होनेके कारण रागादिक विकारोंसे पृथक्, क्षणिक पर्याय होनेके कारण भाव्यमान केवलज्ञानादि शुद्ध पर्यायोंसे भी पृथक, ज्ञान दर्शन आदि गुणोंके विकल्पों (भेदों) से रहित अखण्ड ज्ञायकस्वरूपमात्र मैं हूँ। क्षणिक अवस्थावोंमें अनुपयुक्त व लक्ष्यमें लिया है केवल अकेले ज्ञायक ध्रुव स्वभावको जिसने एवं उस स्वभावमें स्थिर होनेवाला ज्ञातास्वरूप मैं हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमानपर्यायनिषेधो नास्ति, सः स्वस्वसमये भवत्येव परन्त्वभेदगुणदृष्टचात्मस्वभावे ज्ञाते पर्यायलक्ष्यो हीयते। यतो हि विनैव निजज्ञायकमहत्त्वावबोधं पुण्यपापविकृतभावेषु रुचिर्जायते। तदुत्तमतत्त्वे ज्ञातेहितं विनश्वरं कर्मबीजं को हि मतिमानादृयात्।

वर्तमान पर्यायका निषेध नहीं है, वह (वर्तमान पर्याय) तो अपने समयमें होती ही है, परन्तु अभेद गुणदृष्टिसे आत्मस्वभावके जाननेपर पर्यायिका लक्ष्य दूर हो जाता है, क्योंकि निज ज्ञायक स्वभावके महत्त्वके अवबोध बिना ही पुण्य पापके विकृतभावोंमें रुचि उत्पन्न होती है। सो उस उत्तम तत्त्वके जान लेनेपर कौन बुद्धिमान ऐसा है जो अहित-रूप, विनाशीक कर्मके बीजभूत विकारभावोंका आदर करेगा।

सोहं ज्ञायकभावो यथा वर्तमानकालेस्मि तथैव त्रिकाल-विषयोस्मि। ज्ञानवर्तमानपर्याये लक्ष्यीभूते ज्ञायकभावे ज्ञाते सति स एव त्रिकालस्थो ज्ञायकभावो ज्ञातो भवति। सोय-मात्माहमेतत्सामान्यस्वभावेन पूर्णो निर्मलः पवित्रश्चेति दृष्टचां सत्यां पर्यायनिर्मलतापि भवत्येवेति।

वह मैं ज्ञायकभाव जैसे वर्तमानकालमें हूँ वैसे ही त्रिकालविषयक हूँ। ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें लक्ष्यीभूत ज्ञायकभावके ज्ञात होनेपर वह त्रिकालवर्ती ज्ञायकभाव ज्ञात ही रहता है। यह आत्मा मैं इस सामान्यस्वभावसे पूर्ण निर्मल और पवित्र हूँ इस दृष्टिके होनेपर पर्याय-निर्मलता भी होती ही है।

ननु ज्ञायकभावो हि ज्ञानस्वरूपः ज्ञानं च ज्ञेयाकारनिष्ठ-तातिरिक्तेतरव्यक्तिविरहितं तत्कथं पराश्रयतः स किल शुद्ध इति चेन्न यथा प्रकाशनसमयेपि दीपकः प्रकाशादभिन्नो घटा-दिभ्यो भिन्नस्तथा ज्ञानमपि ज्ञानेनाभिन्नं ज्ञेयतश्चात्यन्तं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक् । ज्ञानं हि स्वस्वभावेन ज्ञेयाकारतया परिणमति न तु ज्ञेयाधीनतया । ज्ञेया हि केवलं तद्विषया भवन्ति । ज्ञानशक्तिः-प्रतिसमये स्वयं परिणमते ज्ञेयाकारनिष्ठस्वरूपवत्त्वेपि नहि ज्ञायकभावस्याशुद्धत्वं द्वैतत्वं वा दाह्यनिष्ठदाहकमात्रस्येव ज्ञेयाकारनिष्ठज्ञायकस्य सामान्यैकस्वरूपत्वात् । सच ज्ञायक-भावः सामान्यविशेषात्मकत्वाद्वस्तुतः स्वयं स्वस्मै स्वं परि-णामयत्यादित्यवत् । सोहं ज्ञायकभावः स तु ज्ञायक एव—

यहाँ शंका होती है कि ज्ञायकभाव तो ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान ज्ञेयाकारमें रहनेके अतिरिक्त अन्य व्यञ्जनावोंसे रहित है सो परका आश्रय होनेसे वह कैसे शुद्ध रहा ।

उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे प्रकाश करनेके समयमें भी दीपक प्रकाशसे अभिन्न है और घटादिक पदार्थोंसे भिन्न है वैसे ही ज्ञान भी ज्ञानसे (जानने से) अभिन्न है और ज्ञेयसे अत्यन्त पृथक् है। निश्चयसे ज्ञान अपने स्वभावसे ही ज्ञेयाकाररूपसे परिणमता है, किन्तु ज्ञेयकी आधीनतासे नहीं परिणमता है । ज्ञेय तो केवल ज्ञानके विषय होते हैं । ज्ञानशक्ति प्रतिसमयमें स्वयं ही परिणमती है । ज्ञेयाकारमें रहनेवाले स्वस्वरूपसे युक्त होनेपर भी ज्ञायकभावके अशुद्धता या द्वैतपनेका प्रसंग नहीं आता क्योंकि दाह्य (जलाये जाने योग्य) में रहनेवाले दाहक (अग्नि) मात्र की तरह ज्ञेयाकारमें रहने वाला ज्ञायकभाव सामान्य एकस्वरूप है । और वह ज्ञायकभाव सामान्यविशे-षात्मक होनेसे वास्तवमें स्वयंको स्वयंके लिए स्वयं परिणमाता है, जैसे कि सूर्य प्रकाशस्वभाव होनेसे स्वयंको स्वयं प्रकाशरूपसे परिणमाता है । ऐसा वह मैं ज्ञायकभाव हूँ सो वह तो ज्ञायक ही है ।

अथ पदव्याख्या क्रियते ।

णवि—नापि, अप्रमत्तः अपि यः न भवति पुनः प्रमत्तस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथैव का । यत्रोच्चस्तरस्वभावपरिणतेरेव निषेधः परोपाधिजभावानामत्यन्तनिषेधः स्वयंसिद्ध एवेत्यपि शब्दस्य रहः ।

अब पदों की व्याख्या की जाती है—

णवि—वह शुद्ध आत्मतत्त्व अप्रमत्त भी नहीं है फिर प्रमत्तकी कथा ही क्या इस प्रकार दोनों अवस्थावोंका निषेध करनेके लिए "नअपि" शब्द आया है। अथवा जहाँ अत्युच्च स्वभावपरिणतिका भी निषेध किया जा रहा है वहाँ परकी उपाधिसे उत्पन्न भावोंका अत्यन्त-निषेध स्वयंसिद्ध ही है यह अपि शब्दका रहस्य है।

होदि-भवति भू सत्तायां इति भूधातोः सत्तार्थत्वात् स ज्ञायकभावः अप्रमत्तो नास्ति प्रमत्तो नास्ति ।

अस् धातुर्भुवि अर्थे वर्तमानत्वात्स आत्मा प्रमत्तो न भवति न चाप्रमत्तो भवति, पूर्वावस्थां परित्यज्य नव्यावस्थां धारयतीत्यपि न दृश्यते स्वभावशुद्धात्मनीति भावः। यतो हि त्रैकालिकज्ञायकभावस्वरूपदृष्टौ परिणतिमात्रमपि नास्ति ।

होदि—भवति—भू धातुसे भवति शब्द बना। भू धातुका सत्ता अर्थ है अतः यह भाव हुआ कि वह ज्ञायकभाव न तो अप्रमत्त है और न प्रमत्त है। तथा सत्ता शब्द अस् धातुसे बना, अस् धातु "होने" अर्थमें है सो यह भाव लेना कि वह आत्मा न तो प्रमत्त होता है और न अप्रमत्त होता है, पूर्व अवस्थाको छोड़कर नवीन अवस्थाको धारण करता है यह भी स्वभावमात्र शुद्धात्मामें नहीं है। क्योंकि; त्रैकालिक ज्ञायकभावस्वरूपकी दृष्टिमें परिणतिमात्र भी नहीं है।

अप्पमत्तो-अप्रमत्तः—मत्तः कषायाविष्टः प्रकर्षेण मत्तः प्रमत्तः न प्रमत्त इति अप्रमत्तः। अयं ज्ञायकभावः अप्रमत्तो नास्ति अप्रमत्तशब्दस्य प्रमत्तस्वीकृत्यनन्तरनिषेधपरत्वात्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रमत्तावस्थायाश्च कषायनिमित्तीभूतकर्मक्षयक्षयोपशमोपशमजत्वाच्च।

यथा किल निशीतरग्रामं प्रेष्यमाणं पुरुषं प्रेषको वदेत् मार्गे स वटवृक्ष आस्ते तत्र भूतदैत्यो नास्ति। तं वाक्यं श्रुत्वा गच्छन् स वटवृक्षसमीपे चिन्तयति 'अत्र भूतो नास्ति'। इति चिन्तवने भूतस्वरूपः प्राङ् मनस्यायातस्तथैवायं शुद्धात्मा प्रमत्तो नास्तीति चिन्तवने पर्यायापेक्षया बुद्धौ तस्य प्रमत्तत्वं प्रागायातं। ततश्च स सामान्यस्वरूपोयमात्मा प्रमत्ताप्रमत्त-कषायाकषाय-योगायोग-मिथ्यासम्यगादिसर्वविकल्परहितो वर्तते।

अप्पमत्तो—अप्रमतः—मत्त कहते हैं कषायाविष्टको, जो प्रकर्षरूपसे मत्त है उसे प्रमत्त कहते हैं, जो प्रमत्त नहीं वह अप्रमत्त कहलाता है। यह ज्ञायकभाव अप्रमत्त नहीं है, क्योंकि अप्रमत्त शब्द तो प्रमत्तपने की स्वीकृतिके अनन्तर ही प्रमत्तके निषेध करनेमें समर्थ है, दूसरी बात यह है कि अप्रमत्त अवस्था कषायके निमित्तभूत कर्मके क्षय, क्षयोपशम व उपशमसे उत्पन्न होती है।

जैसे कि रात्रिमें अन्य ग्रामको भेजे जानेवाले पुरुषको भेजनेवाला कहे—कि देखो मार्गमें वह बड़का पेड़ आता है वहाँ भूत दैत्य कुछ नहीं है डरना मत; तो उस वाक्यको सुनकर जानेवाला वह पुरुष बड़के पेड़के समीपमें चिन्तन करता है "यहाँ भूत नहीं है" इस चिन्तवनमें भूतका स्वरूप पहिले मनमें आगया। उसी प्रकार यह शुद्धात्मा अप्रमत नहीं है ऐसे चिन्तवनमें पर्यायकी अपेक्षासे हुई बुद्धिमें उसके प्रमत्तपना पहिले आगया। इस कारण वह सामान्यस्वरूप यह आत्मा, प्रमत्त अप्रमत्त, कषाय अकषाय, योग अयोग, मिथ्या सम्यक् आदि सर्व विकल्पों से रहित है।

पमत्तो—कषायतीव्रोदयजभावो हि प्रमत्तः स किल संज्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लनकषायतीव्रोदयपर्यन्तं भवति-ततः प्रमत्तशब्देन मिथ्यात्व-सासादनसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाविरतसम्यक्त्वदेशसंयतप्रमत्त-संयतगुणस्थानवर्तिनो जीवपर्याया गृह्यन्ते, अप्रमत्तशब्देन च तत उपरि अप्रमत्ताविरतापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशान्तमोहक्षीणमोहसयोग्ययोगिजिनगुणस्थानवर्तिनो भावा गृह्यन्तेथवा सिद्धपर्यन्ता अपि ते सर्वे गृह्यन्ते। अयमात्मा प्रमत्तो नास्ति प्रमत्तभावस्य पर्यायरूपत्वात्स्वभाव-विरुद्धत्वात्परापेक्षत्वात्क्षयित्वाच्च। आत्मा त्वनादिरनन्तः स्वसहायोखण्डचैतन्यस्वभावः।

पमत्तो—कषायके तीव्र उदयसे उत्पन्न हुआ भाव प्रमत्त है, वह भाव संज्वलन कषायके तीव्र उदय पर्यन्त होता है। इस कारण प्रमत्त शब्दसे मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरत सम्यक्त्व, देशसंयत, प्रमत्तसंयत ये ६ गुणस्थानवर्ती जीवपर्यायें ग्रहणकी जाती हैं और अप्रमत्त शब्दसे उससे ऊपरके भाव अर्थात् अप्रमत्तसंयत, अपूर्व-करणप्रविष्टविशुद्ध संयत, अनिवृत्तिकरणप्रविष्ट विशुद्ध संयत, सूक्ष्म-साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी जिन, अयोगी जिन ये ८ गुणस्थानवर्ती भाव ग्रहण किये जाते हैं अथवा सिद्ध पर्यन्त भी वे सब भाव ग्रहण किये जाते हैं। यह आत्मा प्रमत्त नहीं है, क्योंकि प्रमत्त भाव पर्यायरूप है, स्वभावविरुद्ध है, परापेक्ष है और विनश्वर है। परन्तु, आत्मा अनादि, अनन्त, स्वसहाय अखण्ड चैतन्यस्वभावमय है।

जाणओ दु जो भावो—ज्ञायकस्वरूपो योसौ भावः पदार्थः स शुद्धात्मा अत्रायमात्मानंतगुणवत्त्वेपि ज्ञानप्रधानदृष्टचा तत्सामान्यस्वभावेन ज्ञायकभावपदेन स्मृतः आत्मनो ज्ञायक-स्वरूपत्वात् अन्येषां सर्वेषां शक्तीनां तन्मयस्यैव पोषणात् पुद्गलस्य मूर्तित्ववत्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाणश्रो दु जो भावो—ज्ञायकस्वरूप जो यह भाव अथवा पदार्थ है वह शुद्धात्मा है। यहाँ यह आत्मा अनन्त गुणोंसे युक्त होनेपर भी ज्ञानप्रधानदृष्टिसे और उस सामान्यस्वभावसे ज्ञायकभावपदके द्वारा स्मरण किया गया है। क्योंकि, आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप ही है, अन्य शक्तियाँ तो ज्ञायकस्वभावमय आत्माका ही पोषण करती हैं। पुद्गलके मूर्तित्वकी तरह अर्थात् जैसे कि पुद्गल मूर्तस्वरूप ही है, उसमें अन्य धर्म तो उस मूर्त पुद्गलका ही पोषण करते हैं।

परंच—यद्यपि सर्वेषामर्थाणां द्रव्यक्षेत्रकालभावमयत्वादात्मापि द्रव्यक्षेत्रकालभावमयस्तथापि द्रव्यक्षेत्रकालद्रष्टौ विकल्पस्यापतितत्वाज्ज्ञानमात्रभावरूपानुभवनेन निर्विकल्पतया तस्यैवानुभवनात् तेनैवानुभवनान्निर्विकल्पत्वप्रसिद्धेर्ज्ञायकभावत्वेनैव शुद्धो गदितः।

ओर भी यह बात है—कि यद्यपि चूंकि समस्त पदार्थ द्रव्य क्षेत्रकालभावमय हैं सो आत्मा भी द्रव्यक्षेत्रकालभावमय है, तो भी द्रव्य, क्षेत्र और कालकी दृष्टिमें विकल्प आ ही पड़ता है और ज्ञानमात्र भावरूपके अनुभवनके द्वारा निर्विकल्परूपसे आत्माका ही अनुभव होता है उस स्वयंके द्वारा ही अनुभव होता है जिससे निर्विकल्पताकी सिद्धि होती है। इस कारण ज्ञायकभावरूपसे ही आत्माको शुद्ध कहा गया है।

एवं भणति सुद्धं (सुद्धा वा)—पूर्वोक्तरीत्या प्रमत्ताप्रमत्तस्थानीयसर्वपर्यायरहितं त्रैकालिकं शुद्धात्मानं शुद्धतत्त्ववेदिनः शुद्धनयावलम्बिनः शुद्धं भणंति-भण् धातोः शब्दार्थत्वात् शब्दार्थं प्रकटयन्तीति भावः। पुनश्च किं भणंति इति प्रश्ने समादधाति।

एवं भणंति सुद्धं (सुद्धा वा)—पूर्वोक्त रीतिसे प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थान सम्बन्धी सर्व पर्यायोंसे रहित त्रैकालिक शुद्धात्माको शुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वके ज्ञाता शुद्धनयका अवलम्बन करनेवाले सत्पुरुष शुद्ध कहते हैं अर्थात् उस शब्दके अर्थको प्रकट करते हैं। भण् धातुका अर्थ शब्दके अर्थको प्रकट करना है। और फिर क्या कहते हैं इस प्रश्नके होनेपर आचार्य श्री समाधान करते हैं —

णाओ जो सोउ सो चेव—अनेककल्पनाभिस्तत्परीक्षण-प्रयत्नेपि कल्पनातीतत्वात् दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षामाया-मिथ्यानिदानशल्यत्रयादिविभावरहितपरिणत्यानुभूयमानस्व-विषयत्वात् एवं भणति शुद्धनयतत्त्ववेदिनः—"ज्ञातः शुद्धात्मा यः स ज्ञाता एव उपमाविकल्पादिद्वैतसम्बन्धासहत्वात्। सः केवलमेको ज्ञातैव ज्ञानस्य विषये कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात्।

णाओ जो सोउ सो चेव—अनेक कल्पनाओंके द्वारा उस तत्त्वके परीक्षणका प्रयत्न करनेपर भी कल्पनासे अतीत होनेके कारण, दृष्ट श्रुत अनुभूत भोगोंकी आकांक्षा माया मिथ्या निदान इन तीन शल्य आदि विभावोंसे रहित परिणतिके द्वारा अनुभूयमान स्व विषय होनेसे शुद्धनयके तत्त्वके ज्ञाता ऐसा कहते हैं—कि जाना गया शुद्धात्मा जो है वह ज्ञाता ही है, क्योंकि उसमें उपमा विकल्प आदि द्वैतका सम्बन्ध सहन नहीं है। वह केवल एक ज्ञाता ही है, क्योंकि ज्ञानके विषयमें कर्त्ता व कर्म अनन्य ही है अर्थात् ज्ञान ही कर्ता है ज्ञान ही कर्म है, अन्य कर्ता हो अन्य कर्म हो ऐसा नहीं है।

इदमत्र तात्पर्यम्—शुद्धात्मनि दृष्टे शुद्धात्मपरिणतिभव-नात् शुद्धात्मा दृष्टव्यो ज्ञातव्यः प्रतिभातव्य एवास्ति यत्प्रति-भासनात् विविधसंतापसंतप्तत्वस्यावश्यंनाशिता प्रवर्तते। सः शुद्धात्मा प्रमत्ताप्रमत्तादिसर्वपर्यायस्वरूपशून्यः समस्तपरद्रव्य-विविक्तो ज्ञायकभाव एव, तमेव पश्य चिन्तय ध्यायस्व सर्व-संकल्पविमुक्तश्च सन्ननुभव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ यह तात्पर्य है कि शुद्धात्माके देखनेपर शुद्धात्माकी परिणति होती है अतः शुद्धात्मा द्रष्टव्य ज्ञातव्य व प्रतिभातव्य ही है अर्थात् शुद्धात्माका अवश्य परिचय कर लेना चाहिये। जिस शुद्धात्माके प्रतिभाससे नाना संतापोंसे संतप्तपनेका अवश्य नाश होता है, वह शुद्धात्मा प्रमत अप्रमत्त आदि सर्व पर्यायोंके स्वरूपसे शून्य, समस्त पर द्रव्योंसे विविक्त ज्ञायकभाव ही है, उसको ही देखो, विचारो, ध्याओ और समस्त संकल्प विकल्पोंसे मुक्त होते हुए उसका ही अनुभव करो।

नन्वात्मा दर्शनज्ञानचारित्रवांस्तु वर्तत एव तद्गुणानां गुणस्थानपरिणत्या प्राक् पश्चात् पूर्णत्वात्तदभावे च आत्म-वस्तुन एवासिद्धत्वात्तत्कथं केवलं ज्ञायक एव शुद्धस्तस्य दर्शन-ज्ञानचारित्रवत्त्वेनाशुद्धत्वमिति चेन्न यतः—

यहाँ शङ्काकार कहता है कि आत्मा तो दर्शनज्ञानचारित्रवाला है ही, उसके गुण गुणस्थान-परिणतिद्वारा पहिले व पीछे त्रिकाल पूर्ण ही हैं, गुणोंका अभाव होनेपर तो आत्मा वस्तु ही असिद्ध हो जावेगा फिर ऐसा क्यों कहा गया है कि केवल ज्ञायक ही शुद्ध है, वह तो दर्शनवान् है, ज्ञानवान् है, चारित्रवान् है, इस कारण आत्मा अशुद्ध तो हो ही गया? अब इसका समाधान आचार्य देव करते हैं कि यह बात नहीं है क्योंकि —

ववहारेणुवदिस्सइ जीवस्स चरित्त दंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥७॥

अनन्तधर्मात्मकाभेदपरिणतज्ञायकभावमयजीवस्य तीर्थ-प्रवृत्तिनिमित्तकृतगुणगुणिभेदरूपव्यवहारनयेन तत्त्वानवबुद्धस्य केश्चिद्धर्मैरवबोधनाय चरतीति चारित्रं पश्यतीति दर्शनं जानातीति ज्ञानमिति प्रणाल्या दर्शनज्ञानचारित्रवत्तोप-दिश्यते। परमार्थतस्त्वनंतगुणपर्यायाभेदव्यस्थितद्रव्यस्यैक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञायकभावमयत्वेनानुभूयमानतायां न दर्शनं ज्ञानं न चारित्रं केवलं ज्ञायक एक एव शुद्धः ।

ववहारेणुवदिस्सइ जीवस्स चरित्त दंसणं णाणं ।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ ७ ॥

अनन्तधर्मात्मक अभेदपरिणत ज्ञायकभावमय जीवके तीर्थप्रवृत्तिके निमित्त किये गये गुण गुणीके भेदरूप व्यवहारनयसे तत्त्वके अजानकार पुरुषको किन्हीं धर्मोंके द्वारा समझानेके लिये "जो आचरण करे सो चारित्र, जो देखे सो दर्शन, जो जाने सो ज्ञान" इस प्रणालीसे आत्मा दर्शनवाला है, ज्ञानवाला है, चारित्रवाला है यह उपदेश किया जाता है। परमार्थसे तो अनन्त गुण पर्यायोंमें अभेदरूपसे व्यवस्थित आत्म-द्रव्यके एक ज्ञायकभावमयरूपसे अनुभव किये जानेपर उसमें न दर्शन है, न ज्ञान है, न चरित्र है वह तो केवल एक ज्ञायकमात्र ही शुद्ध है।

अत्र हि केचिद्वस्तुस्वातन्त्र्यस्वभावनयप्रकारानववेदिनो बहुभिः प्रकारैर्जीवस्याशुद्धत्वं प्रथयन्ति तथाहि—जीवस्य कर्मादिपरद्रव्यसंयोगेनाशुद्धत्वं कर्मनिमित्तोद्भूतपर्यायनिज-मान्यतयाशुद्धत्वं पापादिविकारभावेनाशुद्धत्वं व्रतं करोमि संयमं पालयामित्यादिशुभविकारत्वेनाशुद्धत्वं । तत्र तत्त्ववे-दिनो वदन्ति एतैरशुद्धत्वं दूरमास्ताम् तेषामत्र सम्यग्दर्शना-नुभवप्रकरणे विचारमात्रस्याप्यसहत्वात्, तत्र किलात्मनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रमिति विकल्पभेदमात्रस्याप्यशुद्धत्वं नास्ति, पारमार्थिकनिजशुद्धात्मद्रव्यानुभवे तद्विकल्पानामविद्यमान-त्वात् । अखण्डस्वभावे निजज्ञायकभावे ज्ञाते सत्यपि प्राक्पदव्यां पुण्यादिभावाः भवन्त्यथवा ज्ञानदर्शनादिभेदविक-ल्पा उत्पद्यन्ते तथापि "विकारा विकल्पाश्च न मे स्वभावा मे ज्ञायकभावस्वभावो ह्येतेषां विकाराणां विकल्पानां च नाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एव न तु रक्षकः, पर्यायस्वभावेन भवन्ति चेद्भवतु अहं किलैष ज्ञायकस्वभावोहं" इति दृढ़प्रतीत्या सद्दृष्टिः संलक्ष्य एवास्ते ।

यहाँ पर वस्तुके स्वातन्त्र्य स्वभावको व नयोंके प्रकारोंको न जानने वाले कितने ही लोग नाना तरीकोंसे जीवके अशुद्धपनेको प्रसिद्ध करते हैं:—जैसे कि—जीवमें कर्म आदिक पर द्रव्योंका संयोग दिखा कर अशुद्धता प्रसिद्ध करते हैं, कर्मके निमित्तसे उत्पन्न पर्यायोंमें निजकी मान्यतासे अशुद्धता प्रसिद्ध करते हैं, पापादि विकारभावोंसे अशुद्धता प्रसिद्ध करते हैं, मैं व्रत करता हूँ संयम पालता हूँ इत्यादि शुभ विकारों से अशुद्धता प्रसिद्ध करते हैं। वहाँ पर तत्त्ववेदी पुरुष कहते हैं—कि इन बातोंके द्वारा होनेवाली अशुद्धताकी बात तो दूर रही क्योंकि यहाँ सम्यक् दर्शनके अनुभवके प्रकरणमें उन बातोंका तो विचारमात्र भी असह्य है; यहाँ तो आत्माके दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ऐसे विकल्प भेद मात्रकी भी अशुद्धता नहीं है, क्योंकि परमार्थभूत एक निज शुद्ध आत्म-द्रव्यके अनुभव होनेपर वे विकल्प भी विद्यमान नहीं रहते। अखण्ड स्वभावी निज ज्ञायकके ज्ञात होनेपर भी पहली पदवीमें पुण्यादिक शुभ-भाव होते ही हैं अथवा ज्ञान दर्शन आदिकके भेदविकल्प उत्पन्न होते हैं तो भी "विकार और विकल्प मेरे स्वभाव नहीं हैं, मेरा ज्ञायक स्वभाव तो इन विकारोंका और विकल्पोंका नाशक ही है, रक्षक तो है ही नहीं; ये विकार व विकल्प पर्यायस्वभावसे होते हैं तो होओ मैं तो यह ज्ञायकस्वभाव ही हूँ" इस दृढ़ प्रतीतिके कारण यह आत्मा सम्यक् दृष्टि वाला और सम्यक् लक्ष्यवाला ही है।

दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्यादिभेदाभेदविकल्पाः क्रमापेक्षयैव भवन्ति क्रमस्तु मनस अपेक्षां विनाशक्य एवेति भेदग्राहिमन-सोऽवलम्बिनो ज्ञानस्य सम्यग्दर्शनविषयभूताखण्डनिर्मलज्ञायक-भावरूपनिर्विकल्पानुभवाविषयत्वात्ते विकल्पाः दृष्ट्यां न व्यवतिष्ठन्ते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन, ज्ञान, चरित्र इत्यादि भेदाभेदविकल्प क्रमकी अपेक्षासे ही होते हैं और क्रम मनकी अपेक्षाके बिना होना अशक्य है सो भेदवाही (भेद ढोनेवाले) मनका अवलम्बन करने वाला ज्ञान सम्यग्दर्शनके विषयभूत अखण्ड निर्मल ज्ञायकभावरूप निर्विकल्प अनुभवका विषय नहीं है, अत: वे विकल्प स्वभावमात्र आत्माकी दृष्टिमें नहीं ठहरते हैं।

यद्यप्यात्मनि प्रत्यक्प्रत्यक्स्वरूपवन्तोनंता गुणा: सन्ति तथापि तेषु प्रत्यग्गुणेषु दृष्टिं कुर्वाणानां गुणमयाभेदैकत्वगत आत्मा नानुभवगोचरो भवति पुनरुच्यताम् योनुभवे लक्ष्य एव नास्ते तस्मिस्थिरता कथं स्यात् ? तत्स्थैर्यं बिना मोक्षमार्गो मोक्षश्चैव क: कथं वा स्यात् ?

यद्यपि आत्मामें पृथक् पृथक् स्वरूपवाले अनन्त गुण हैं तो भी भिन्न भिन्न गुणोंमें दृष्टि करनेवालोंके गुणमय अभेदरूप एकत्वमें स्थित आत्मा अनुभवगोचर नहीं होता; फिर बताइए जो अनुभवमें लक्ष्यभूत ही नहीं है उसमें स्थिरता कैसे हो ? और उस अभेद स्वभावमें स्थिरता के बिना मोक्षमार्ग भी क्या व कैसे हो !

अनन्तधर्मिण्येकस्मिन् निजज्ञायकभावमये भेदद्वारा विज्ञाते सति गुणदृष्टयनुभवो न जायते अभेदैकाग्रयता चाशक्या। यतो ह्यविकल्पस्याखण्डस्य निजशुद्धात्मनोवबोधं विना विकल्पेभ्यश्चित्तनिरोधोशक्य:, ततश्चान्तर्व्रततप:संयमादयोशक्या:। वाह्यक्रियामात्रस्य मोक्षमार्गत्वस्य निषेधान्न तेन किमप्यभीष्टं साध्यम्।

भेदविज्ञानद्वारा अनन्तधर्ममय एक निज ज्ञायकभावमय आत्मतत्त्व के विज्ञात होनेपर पृथक् पृथक् गुणोंकी दृष्टि व अनुभव नहीं रहता और अभेदस्वभावकी एकाग्रता भी अशक्य नहीं रहती है। चूंकि अविकल्प अखण्ड निज शुद्धात्माके अवबोध बिना विकल्पोंसे चित्तका हटा लेना अशक्य है इसी कारण आत्मस्वरूपके अज्ञानमें अन्तर्व्रत, अन्तस्तप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व अन्तःसंयम आदि भी अशक्य हैं। वाह्य क्रियामात्रके मोक्षमार्गपनेका निषेध होनेसे वाह्य क्रियामात्रसे कुछ भी अभीष्ट सिद्ध होने योग्य नहीं है।

अखण्डोप्ययमात्मा स्वरूपेणास्ति पररूपेण नास्ति द्रव्येणको गुणपर्यायैरनेक इत्याद्यनेकधर्ममयः। अयं किल यदानन्तगुणाभेदरूपैकपिण्डत्वेन निर्विकल्पतयानुभूयते तदा पूर्णोनुभूयते यदा भेदविकल्पपुरःसरं विज्ञायते तदा स अंशरूपेणैवातो निश्चयनयविषयमखण्डमात्मानमुपलभस्वेति परमोपदेशः।

अखण्ड होनेपर भी यह आत्मा स्वरूपसे है, पररूपसे नहीं है, द्रव्यसे एक है, गुण पर्यायोंसे अनेक हैं इत्यादिक अनेकधर्ममय है। निर्विकल्पताके द्वारा जब यह आत्मा अनन्त गुणोंके अभेदरूप एक पिण्डरूपसे अनुभूत होता है तब यह पूर्ण अनुभूत होता है और जब यह आत्मा भेदविकल्पपुरःसर याने भेदविकल्पपूर्वक (भेदविकल्पप्रणालीसे) जाना जाता है तब अंशरूपसे ही जाना जाता है इस कारण निश्चयनयके विषयभूत अखण्ड आत्माकी उपलब्धि करो यही परम उपदेश है।

सम्यग्दर्शनस्य विषयोखण्डनिर्मलत्रिकालानुगतकालकलाविरहितसामान्यकरूपचैतन्यभावस्तस्य लक्ष्ये निर्मलपर्याय आविर्भूय तत्रैव सामान्ये सम्मिलति तत्सदृशो भवतीति भावः।

सम्यग्दर्शनका विषय अखण्ड, निर्मल, त्रिकाल अनुगत, कालकलासे विरहित, सामान्य एकरूप चैतन्य स्वभाव है उसका लक्ष्य होनेपर निर्मल पर्याय प्रकट होकर उस ही सामान्यमें सम्मिलित हो जाता है अर्थात् उसके सदृश (अनुरूप) हो जाता है।

नानया गाथयार्थस्य गुणानां विप्रतिषेधः किन्त्वत्र परमार्थस्वरूपात्मन्यभेदानुभवस्य स्थितिः प्रदर्शिता। वस्तुतश्च द्रव्यमखण्डमेकं स्वभावः सामर्थ्यं चैकम् सामयिकी परिणतिश्चाप्येका। अखण्डकवस्तुनो निर्बाधभेदकल्पनमपि व्यवहारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस गाथासे पदार्थके गुणोंका निषेध नहीं किया गया है, किन्तु यहाँ परमार्थस्वरूप आत्मामें अभेदानुभवकी स्थिति दिखाई गई है। और वास्तवमें द्रव्य अखण्ड एक है, स्वभाव और सामर्थ्य भी एक है, समय समयमें होनेवाली परिणति भी उस समयमें एक है। अखण्ड एक वस्तुमें वाधारहित अनुकूल भेदकी कल्पना करना भी व्यवहार है।

सम्यग्दर्शनादयः पर्यायाः लक्षितपर्यायभेदश्च व्यवहारः। तेन सद्भूतव्यवहारेणव ज्ञानिनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्। भेद-लक्ष्ये पर्यायनिर्मलता न, लक्ष्यविषयस्य खण्डितस्वरूपत्वात्। यत्र सिद्धपर्यायरूपशुद्धतत्त्वलक्ष्येपि संवरनिर्जरे गदिते तत्र तत्पर्यायानुरूपानादिसिद्धज्ञायकभावलक्ष्यो गर्भित एवास्ते। तत्रापि ज्ञायकस्वभावानुभवस्यैव सकलं माहात्म्यम्।

सम्यग्दर्शन आदिक पर्यायें और लक्ष्यमें लाया हुआ पर्यायभेद ये सब व्यवहार हैं, उस सद्भूत व्यवहारसे ही ज्ञानी (आत्मा) के दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। भेदके लक्ष्यमें पर्यायकी निर्मलता नहीं होती है, क्योंकि उस लक्ष्यका विषय खण्डितस्वरूप है। जहाँ सिद्धपर्यायरूप शुद्ध तत्त्वके लक्ष्यमें भी संवर और निर्जरा कही गई है वहाँ उस पर्यायके अनुरूप अनादिसिद्ध ज्ञायकभावका लक्ष्य गर्भित ही है। वहाँ भी ज्ञायकस्वभावके अनुभवका ही सर्व माहात्म्य समझें।

दर्शनज्ञानादयोनन्तगुणा वस्तुरूपेणैक एव भूत्वा कथं-चित्कार्यपेक्षया मिथो निवर्तन्ते। यतो हि ज्ञानगुणद्वारा सकलगुणाः स्वस्वकार्यवशाद् भिन्ना अप्येकरूपेणैव प्रतिभा-संते। यद्यपि ते भिन्नभिन्नस्वलक्षणास्तथापि ते सममेकमेव वस्तु। वस्तुनि द्रव्यगुणपर्यायभेदा न सन्ति अन्वयिसामान्य-रूपद्रव्यसहभाविविशेषलक्षणगुणक्रमभाविविशेषलक्षणपर्यायेष्वे-कस्य व्यवस्थितस्य वस्तुत्वात्, तमवगमयितुं गुणगुणिभेदं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्वोपदेशपद्धतिर्व्यवहारः। व्यवहारविषयभूतानां दर्शनज्ञानचारित्रादीनां पर्यायाणां स्वस्वलक्षणप्रसिद्धगुणानां लक्ष्यः शुभरागसंपादकः। अखण्डसामान्यचैतन्यभावदृष्टिस्तु रत्नत्रयविकासस्य कैवल्यस्य च कारणम् सामान्यनिर्मललक्ष्यस्य विशेषे नैर्मल्यस्य निबन्धनत्वात्। तत्रापि विकासः पर्यायो व्यवहारः। यस्य विकासरूपस्तद्द्रव्यमिति निश्चयः।

दर्शन, ज्ञान आदिक अनन्त गुण ही वास्तवमें एक ही होकर कथंचित् कार्यकी अपेक्षासे परस्पर निवृत्त होते हैं। जैसे कि समस्त गुण अपने अपने कार्यके वशसे भिन्न होकर भी ज्ञानगुणद्वारा एकरूपसे ही प्रतिभासमान होते हैं। यद्यपि वे भिन्न भिन्न स्वलक्षण हैं तो भी वे सब हैं एक साथ एक ही वस्तु। वस्तुमें द्रव्य गुण व क्रमभावी विशेषरूप पर्याय इनमें जो एक व्यवस्थित है वही वस्तु है; उसको जाननेके लिए गुण गुणीके भेदको करके जो उपदेशकी पद्धति है वह व्यवहार है।

व्यवहारके विषयभूत दर्शन ज्ञान चारित्र आदिक पर्यायोंका व स्वस्वलक्षणसे प्रसिद्ध गुणोंका लक्ष्य शुभरागका संपादक है, परन्तु अखण्ड सामान्य चैतन्यभावकी दृष्टि रत्नत्रयके विकासरूप कैवल्यका कारण है, क्योंकि सामान्य निर्मल तत्त्वका लक्ष्य विशेषमें (पर्यायमें) निर्मलताका कारण है। वहाँ भी जो विकास है वह पर्याय है, व्यवहार है। जिसका यह विकासरूप है वह द्रव्य है यह निश्चय हुआ।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

व्यवहारेण—वस्तुगतकार्यविशेषनिरपेक्षगुणप्रतिपादनरूपानुपचरितसद्भूतव्यवहारनयेन कार्यविशेषसापेक्षगुणप्रतिपादनरूपोपचरितसद्भूतव्यवहारनयेन वा। वि-विधिपूर्वकं अवहरणं भेदीकरणं व्यवहार उपदेशमात्रं वा व्यवहारस्तेन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब पदोंकी व्याख्या की जाती है—

ववहारेण :—वस्तुगत कार्यविशेषसे निरपेक्ष गुणके प्रतिपादनरूप अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयसे व कार्यविशेषसे सापेक्ष गुणके प्रतिपादनरूप उपचरित सद्भूतव्यवहारनयसे। यह "व्यवहारेण" का भाव हुआ। वि = विधिपूर्वकं अवहरणं अर्थात् भेद करना सो व्यवहार है अथवा उपदेशमात्र याने कथन जितना है वह सब व्यवहार है।

उवदिस्सइ-उपदिश्यते—उप आत्मन: समीपं—श्रोतुर्यथा ज्ञानगतं स्यात्तथा दिश्यते कथ्यते। निष्प्रयोजनसंलापस्योन्मत्तचेष्टात्वात्।

उवदिस्सइ :—उपदिश्यते—उप याने आत्माके समीप श्रोताके जैसे ज्ञानगत हो जावे (समझमें आ जावे) उस तरह उपदेश किया जाता है अर्थात् कहा जाता है; क्योंकि निष्प्रयोजन जो संलाप (बोलना) है वह उन्मत्त (मुग्ध) पुरुषोंकी चेष्टा है।

णाणिस्स—ज्ञानिन: ज्ञानं यस्यास्ति स ज्ञानी उपलक्षणेन ज्ञानसाहचर्यात् इतरेपि गुणा यस्य संति स ज्ञानी तस्य ज्ञानिनो जीवस्य। अथवा सम्यग्यदर्शज्ञानचारित्रपर्यायमपेक्ष्य ज्ञानिन इति निर्देश: शुद्धपर्यायवतो गुणस्य प्रतिपादनेदुर्गतित्वात्।

णाणिस्स :—ज्ञानिन: :—ज्ञान जिसके है उसे ज्ञानी कहते हैं और उपलक्षणसे ज्ञानके साहचर्यमें अन्य गुण भी जिसके हैं उसे ज्ञानी कहते हैं, उस ज्ञानीके याने जीवके। यह "णणिस्स" का अर्थ हुआ। अथवा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र पर्यायकी अपेक्षा करके 'ज्ञानिन:' यह निर्देश है, क्योंकि शुद्धपर्यायवाले गुणके प्रतिपादन करनेमें कठिनाई नहीं होती है।

चरित्त—रागद्वेषाद्यशुद्धपर्यायेषु ज्ञायकभावस्थैर्यरूपशुद्ध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायेष्वनुगतं चारित्रं चारित्रंज्ञितो गुणः। शुद्धं चारित्रं वा।

चरित्त :—राग द्वेष आदिक अशुद्ध पर्यायोंमें व ज्ञायकभावमें स्थिरतारूप शुद्धपर्यायोंमें जो अनुगत गुण हैं उसे चारित्र (गुण) कहते हैं अथवा चारित्र नामक गुण व शुद्ध चारित्र। यह "चरित्त" शब्द का अर्थ है।

दसण—दर्शनं आत्माभिमुखचित्प्रकाशः, रत्नत्रयस्य मोक्षमार्गत्वात् मोक्षमार्गदर्शकग्रन्थे प्रकृतत्वाच्च श्रद्धानामको मिथ्यात्वसासादनमिश्रसम्यक्त्वावस्थास्वनुगतो गुणः सम्यग्दर्शनम् वा।

दंसणं :—दर्शनं—दर्शन अर्थात् आत्माभिमुख चित्प्रकाश अथवा चूंकि रत्नत्रय मोक्षमार्ग हैं और मोक्षमार्गके ग्रन्थमें वही प्रकृत है इस कारण दंसणं का यह अर्थ लेना कि—मिथ्यात्व सासादन मिश्र व सम्यक्त्वकी अवस्थाओंमें अनुगत जो श्रद्धानामक गुण है वह दर्शन अथवा सम्यग्दर्शन है। यह "दंसणं' का अर्थ हुआ।

णाणं—स्वपरव्यवसायिज्ञानविशेषेष्वनुगतो ज्ञानगुणः। ज्ञानव्यक्तिरूपो वा।

णाणं :—स्वपरव्यवसायी ज्ञानविशेषोंमें अनुगत ज्ञान गुण। अथवा ज्ञानका व्यक्तिरूप याने जानना। यह 'णाणं' का अर्थ हुआ।

णवि णाणं—परमार्थतः वस्त्वनुभवदृष्टौ ज्ञानं अपि नास्ति ज्ञानगतसत्ताकानामन्येषां चर्चैव केति अपि शब्दस्य रहः।

णावि णाणं :—परमार्थसे वस्तुके अनुभवकी दृष्टिमें ज्ञान भी नहीं है फिर जिनकी सत्ता ज्ञानमें आरही है ऐसे अन्य पदार्थोंकी चर्चा ही क्या है अर्थात् जब आत्माके परमार्थसे ज्ञान भी नहीं है तो अन्य पदार्थों की बात ही क्या। यह अपि शब्द का रहस्य है।

ण चरित्तं—यथा धर्मिधर्मव्यवस्थितात्मभावे ज्ञानविकल्पो नास्ति तथैव चारित्रं नास्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण चरित्तं :—जैसे धर्मी धर्मरूपसे व्यवस्थित आत्मभावमें ज्ञान विकल्प नहीं है उसी तरह चारित्र नहीं है।

ण दंसणं—नापि दर्शनं। अभेदचैतन्यस्वभावात्मकात्मानुभवे ज्ञानचारित्रविकल्पाभाववद्दर्शनस्यापि विकल्पो न विद्यते, यतो ह्यात्मा किलैकस्वभाव एव।

ण दंसणं :—नापि दर्शनं—अभेदचैतन्यात्मक आत्माका अनुभव होनेपर ज्ञान चारित्रके विकल्पके अभावकी तरह दर्शनका भी विकल्प (भेद) नहीं है, क्योंकि आत्मातो एकस्वभाव ही है।

जाणगो सुद्धो—तर्हि किमस्तीति प्रश्ने समुत्तरमेतत्—ज्ञायकः शुद्धचैतन्यस्वभावः। यद्यप्ययमपि विकल्पः किन्तु पूर्णाखण्डवस्तुप्रतिपादनदत्तशक्तित्वादनेन शब्देन स वाच्योभीप्सितः प्रतिपादितः।

जाणगो सुद्धो :—तो फिर कैसा है ऐसा प्रश्न होनेपर यह उत्तर है—ज्ञायक शुद्ध चैतन्यभाव। यद्यपि यह भी विकल्प है किन्तु पूर्ण अखण्ड वस्तुके प्रतिपादनमें लगाई है शक्ति जिसने ऐसे इस शब्दके द्वारा वह अभीप्सित (इष्ट) वाच्य (अर्थ) प्रतिपादित किया है।

इदमत्र तात्पर्यम्—यथा ह्यग्निर्निश्चयनयेनाग्निरभेदरूप एक एव ज्ञायते किन्तु व्यवहारेण स दाहकः पाचकः प्रकाशकः, भिन्नभिन्नकार्यापेक्षया भेदरूपो ज्ञायते। तथायमात्माप्यभेदविषयिकनिश्चयनयेन शुद्धचैतन्यस्वभावोपि भेदरूपव्यवहारनयेन ज्ञानस्वरूपो दशनस्वरूपश्चारित्रस्वरूपो वेति भिन्नभिन्नकार्यापेक्षया भिद्यते तस्य धर्माणां संयोजनमपि बुद्धौ वर्तते। किन्तु भेदलक्ष्यस्य रागसंपादकत्वात् निर्मलनिर्विकल्पकस्वरूपाभेदलक्ष्यस्य निर्मलतासंपादकत्वात् निश्चयनयोपयोगे प्रयत्नो विधेयः। तर्हि शुद्धनिश्चयनयापरनामा परमार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एव वक्तव्य उपेक्ष्यनयस्य प्रतिपादने लक्ष्ये च रागादिविकल्पोपत्तेरिति चेत् ।

यहाँ यह तात्पर्य है—जैसे कि अग्नि निश्चयनयसे अग्नि अभेदरूप एक ही ज्ञात होती है, किन्तु व्यवहारसे वह दाहक पाचक प्रकाशक आदि रूपसे भिन्न भिन्न कार्यकी अपेक्षासे भेदरूप जानी जाती है। उसी प्रकार यह आत्मा भी अभेदको विषय करनेवाले निश्चयनयसे शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र होता हुआ भी भेदरूप व्यवहारनयसे ज्ञानस्वरूप है, दर्शनस्वरूप है व चारित्रस्वरूप है इस प्रकार भिन्न भिन्न कार्यकी अपेक्षासे भेदको प्राप्त होता है व उसके धर्मोंका संयोजन भी बुद्धिमें वर्तता है। किन्तु भेदका लक्ष्य रागका संपादक (उत्पन्न करनेवाला है, और निर्मल निर्विकल्प एकस्वरूप अभेद तत्त्वका लक्ष्य निर्मलताका संपादक है अतः निश्चयनयके उपयोगमें प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ शंकाकार कहता है कि जब उपेक्षा करने योग्य नय (व्यवहारनय) के प्रतिपादनमें और लक्ष्यमें विकल्पकी उत्पत्ति होती है तब शुद्धनिश्चयनय है अपर नाम जिसका ऐसा परमार्थ ही कहना चाहिए। इसके उत्तरमें आर्यदेव कहते है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह अवहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥८॥

तथा म्लेच्छपल्यां गतेन केनचिदार्येण म्लेच्छभूपालप्राप्तप्रणामेनार्यभाषायां स्वस्तीत्यभिहितो म्लेच्छभूपालोपरिचितार्यभाषात्वेन तथाविधवाच्यवाचकसंबंधानवबोधात्किंचिदपि नावबुध्यमानोनिमेषोन्मेषितनयनो मेष इव केवलं निरीक्षत एव। तथा लोके केनचितध्यात्मयोगिना कदाचिज्जातकारुण्येन निकटभव्यप्राप्तानुनयेनात्मैव हितमित्यभिहितः प्रत्यासन्नसंसारोपीदानीन्तनमपरिचितात्मतत्त्वोनिमेषोन्मेषितनयनो मेष इव केवलं निरीक्षत एव। यथा च यदार्यानार्यभाषासम्बद्धै-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्थज्ञेन तेन म्लेच्छभाषामवलम्ब्य तेविनश्वरत्वं स्यादिति वाच्यं प्रतिपाद्यते तदा स म्लेच्छभूपालोपि स्वहितत्वं प्रतीत्यानन्दाश्रुहृर्षायमाणनयनःसन्नवबुद्धय सुखीयति। तथा यदानिमेषोन्मेषितनयनाकृत्यातिविनतोतिजिज्ञासुरयमित्यवबुद्धय व्यवहारनयमवलम्ब्य दर्शनज्ञानचारित्राण्यततीत्यात्मेत्यादिविशदव्याख्ययात्मपदस्यार्थः प्रतिपाद्यते तदा स सत्वरं तदनुभवयत्नशीलः सम्यक्परिज्ञाय संतुष्टो भवति। एवं व्यवहारेण विना व्यवहारिजनस्य परमार्थबोधस्याशक्यत्वाद्व्यवहारनयोपि वक्तव्य एवास्ति। किन्तु यथार्यो न म्लेक्षितव्यस्तथा स्वसंविदितात्मतत्त्वलीनं प्रति व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः अनिमेषोन्मेषितनयनत्ववदाचारः पात्रस्य जिज्ञासां परोक्षरूपेण चास्तिकनास्वीकृतिमनुमापयति, नैतावदेव, केवलं किन्तु भाविन्यपि सोत्साहो मोक्षमार्गं प्रकटयितैव।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥८॥

जैसे म्लेच्छ देशमें गये हुए व म्लेच्छ राजासे पाया प्रणाम जिसने ऐसे किसी आर्य पुरुषने उस म्लेच्छ राजाको "स्वस्ति" ऐसा आशीर्वाद कहा। वह म्लेच्छ राजा आर्यभाषासे अपरिचित होनेके कारण उस प्रकारके वाच्य वाचकसम्बन्धके अज्ञानसे कुछ भी न समझता हुआ पलक उठे हुए नेत्रोंसे मेष (मेढ़ा) की तरह केवल देखता ही रह जाता है। उसी प्रकार लोकमें जिसे कि किसी समय करुणा उत्पन्न हुई ऐसे किसी आध्यात्मयोगीने निकटभव्यजीवके अनुनय विनयसे "आत्मा ही हित है" ऐसा कहा। तब निकट संसारी होनेपर भी अपरिचित है आत्मतत्त्व जिसको ऐसा वह भव्य जीव उठे हुए हैं पलक जिसके ऐसे मेषकी तरह केवल देखता ही रह जाता है। और जैसे कि आर्यभाषा व म्लेच्छभाषासे सम्बन्धित एक अर्थको जाननेवाले उस विद्वानके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा म्लेच्छभाषाके सहारे "तुम्हारा कल्याण हो, अविनश्वरता हो" यह वाच्य समझाया जाता है तब वह म्लेच्छ राजा भी अपने हितकी प्रतीति करके आनन्दके अश्रुवोंसे हर्षायमाण हैं नेत्र जिसके ऐसा होता हुआ सब समझकर सुखी होता है। उसी प्रकार जब उठे पलकवाले नेत्रोंकी आकृतिसे यह अतिविनयी एवं अति जिज्ञासु है ऐसा जान करके व्यवहार और निश्चयकी प्रतिपादनविधिके विषयको जाननेवाले उस गुरुके द्वारा व्यवहारनयके सहारे "जो दर्शन ज्ञान चारित्रको प्राप्त हो वह आत्मा है" इत्यादि विशद व्याख्यासे आत्मपदका स्व अर्थ समझाया जाता है, तब वह जिज्ञासु निकटभव्य जीव उस आत्मतत्त्वके अनुभवमें यत्नशील होता हुआ सम्यक् प्रकारसे उस सम्यक् आत्मतत्त्वको जान कर संतुष्ट हो जाता है। इस प्रकार व्यवहारके विना व्यवहारीजन को परमार्थका अवबोध करना कराना अशक्य है अतः व्यवहारनय भी वक्तव्य ही है। किन्तु जैसे आर्य पुरुषको म्लेच्छ नहीं बना देना चाहिए अर्थात् म्लेच्छ भाषामें बोलनेकी जरूरत नहीं है उसी प्रकार स्वसंविदित आत्मतत्त्वमें लीन पुरुषके प्रति व्यवहारनयका अनुसरण नहीं करना चाहिए। विना पलक गिरे हुए खुले नेत्रोंके भावकी तरह अन्य विनयादि आचार पात्रकी जिज्ञासाको व परोक्षरूपसे आस्तिकताकी स्वीकृतिका अनुमान कराता है; सिर्फ इतना ही नहीं, किन्तु वह निकट भविष्यत् कालमें सोत्साह मोक्षमार्गको प्रकट करेगा ही।

यथा च म्लेच्छः स्वस्तिपदस्य भावं ज्ञात्वा सुखमनुभवति तथा भव्योपि सु सुष्ठु यथावस्थितं वस्तु तथा अस्तीति श्रद्दधानो वस्तुस्वातन्त्र्यं विज्ञाय सर्वक्लेशादुपरम्य सुखमनुभवति।

और भी, जैसे म्लेच्छ राजा स्वस्ति पदके भावको जानकर सुखका अनुभव करता है, वैसेही वह भव्य जीव भी सु सुष्ठु अर्थात् जैसी वस्तु अवस्थित है वैसी ही है इस प्रकार (सु + अस्ति = स्वस्ति) श्रद्धान करता हुआ वस्तुकी स्वतन्त्रताको जानकर समस्त क्लेशोंसे निवृत्त होकर सुखका अनुभव करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रोतॄणां सविनयजिज्ञासाभावोवश्यमेव सफलीभवति स्वकीयज्ञानस्य पूर्णरूपत्वात्तद्भावस्य। तदनुरूपं च परमकरुणो वक्तापि सचेष्टीभवति। श्रोतारःकिल निर्मलं पूर्णं तत्त्वमवगन्तुं निर्मलपूर्णशक्तिप्रयोगेन सोत्साहं सावधानं मुहुर्मुहुस्तत्त्वमभिमन्यन्त एव स्वदयाशीलस्य तत्त्वावबोधपर्यंन्तं प्रमादरहितत्वेन प्रयत्नशीलत्वात्।

श्रोतावोंका विनयसहित जिज्ञासाभाव अवश्य ही सफल होता है, क्योंकि अपना ज्ञान हीं तो पूर्णरूपताको धारण करता है, जिसके जानने की इच्छा है उसकी पूर्णरूपता इसी ज्ञान गुणमें तो होगी, वहाँ जिज्ञासाकी ही पूर्णता हो जाती। और जिज्ञासाके अनुरूप ही परमकृपालु वक्ता चेष्टा करता है। श्रोतागण निर्मल पूर्ण तत्त्वको जाननेके लिए निर्मल पूर्ण शक्तिके प्रयोगसे उत्साहसहित व अवधानसहित (सावधान) बारबार तत्त्वको मान ही जाते हैं क्योंकि आत्मदयाशील पुरुष तत्त्वके अववोधपर्यन्त प्रमादरहित होनेके कारण प्रयत्नशील रहते हैं।

परमार्थस्तावदखण्डोवक्तव्यः स्वसंवेद्यस्तमवगमयितुं गुणद्वारा पर्यायद्वारा च भेदीकृत्य व्यवहारस्य प्रयोजकत्वम्।

परमार्थसे तो वह ज्ञायकभाव अखण्ड है, अवक्तव्य है व स्वसंवेद्य है; उसको जाननेके लिए गुणोंके द्वारा व पर्यायोंके द्वारा भेद करके व्यवहारकी प्रयोजकता हो जाती है अर्थात् भेद द्वारा वस्तु तत्त्वका समझना होता है इस अपेक्षासे व्यवहार प्रयोजनवान है।

आत्मा हि स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयात्मकस्तत्र द्रव्यत्वं गुणपर्यायसमूहरूपपिण्डत्वं गणनाविषयत्वं। क्षेत्रत्वमसंख्यातप्रदेशरूपत्वं। कालश्च पर्यायः यो यस्मिन् समये वर्तते स तत्र तस्य कालः। भावात्मकत्वं च सर्वगुणमयत्वं तेषु चाभेदेनात्मजीवनकारणात्मकचैतन्यमयत्वं। तत्र द्रव्यक्षेत्रकालदृष्टयात्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निरीक्षणे विकल्पकत्वेव ज्ञानज्ञेययोर्द्वैतत्वात् चैतन्यभावेनाव-लोकने तु संख्याकारक्षणिकपर्यायाणामत्यन्तगौणत्वेन सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्य चैतन्येन संचेतितत्वाच्चेतकचेत्ययोरद्वैतत्वेन तस्यां शुद्धात्मानुभूत्यां निर्विकल्पकत्वरूपस्य परमार्थत्वस्याविर्भावः समुपलभ्यते। तदनुभवस्य तथाभेदरूपेण प्रतिपादयितुमशक्यत्वाद्गुणगुणिनोर्व्यपदेशतो भेदमुत्पाद्य व्यवहारनयेन ज्ञानिनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्याचार्यैः शिष्यः प्रतिपाद्यते।

आत्मा अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव इन चारोंमें तन्मय है, उसमें से द्रव्य तो गुणपर्यायोंका समूहरूप पिण्ड हुआ जो कि गणनाका भी विषयभूत है (गणनासे मतलब गिनती कर लेना नहीं, अनन्त भी गणनाका भेद है) क्षेत्र असंख्यातप्रदेशरूप कहलाता और काल पर्याय कहलाती, जो पर्याय जिस समयमें है वह वहाँ उसका काल है। भावमयका भाव सर्वगुणमय है और उसमें अभेदरूपसे आत्मजीवनका कारणस्वरूप चैतन्यमयता है। उन चारोंमें से द्रव्य, क्षेत्र और काल की दृष्टिसे आत्माका निरीक्षण करनेपर विकल्प ही भोगनेमें आता है, क्योंकि वहाँ ज्ञान और ज्ञेयका द्वैतपना आगया। परन्तु चैतन्यभाव के अवलोकन करनेपर संख्या, आकार व पर्यायें अत्यन्त गौण हो जाती हैं सो सर्वव्यापी एक चित्स्वरूपके चेतनेसे संचेतित होनेसे चेतक और चेत्यका अद्वैतपना हो जाता है, अतः उस शुद्धात्माकी अनुभूतिमें निर्विकल्पकतास्वरूप परमार्थपनेका आविर्भाव प्राप्त होता है। उसका अनुभव (वह अनुभव) उस प्रकार अभेदरूपसे प्रतिपादित किया नहीं जा सकता सो गुण व गुणीके व्यपदेशसे भेद उत्पन्न कराके व्यवहारनय से "ज्ञानीके (आत्माके) दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है" ऐसा आचार्योंके द्वारा शिष्य समझाया जाता है।

सम्यग्दर्शनं निश्चयनयविषयो नास्ति किन्तु यो निश्चयनयस्य विषयः स एव सम्यग्दर्शनस्य विषयः। एवमपि निश्चय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयः सम्यग्दर्शनस्य विषयो नास्ति निश्चयनयस्य सम्यग्दर्शनस्य च खंडरूपत्वात् तयोर्विषयस्य चाखण्डरूपत्वात् ।

सम्यग्दर्शन निश्चयनयका विषय नहीं है, किन्तु जो निश्चयनयका विषय है वही सम्यग्दर्शनका विषय है । ऐसा भी निश्चयनय सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, क्योंकि निश्चयनय और सम्यग्दर्शन खण्डरूप है और निश्चयनय और सम्यग्दर्शन इन दोनों का विषय अखण्ड है ।

अत्र हि यथार्यानार्यभाषावेदिनानार्यभाषयानार्यः प्रतिपाद्यते तथा निश्चयव्यवहारात्मकप्रमाणवेदिना भेदप्ररूपकव्यवहारनयेन व्यवहारी जनः प्रतिपाद्यते । तत्र निर्मलपर्यायवितर्केपि लक्ष्यमसंरुन्ध्य सर्वगुणाद्यभेदरूपो ज्ञायकमात्रः पूर्ण आत्मा लक्ष्यीकर्तव्यः ।

यहाँ जैसे आर्य व मलेच्छ दोनों भाषाओंके ज्ञाता पुरुषके द्वारा म्लेच्छ भाषाके सहारे मलेच्छ समझाया जाता है उसी प्रकार निश्चयव्यवहारात्मक प्रमाणके ज्ञाता सत्पुरुषके द्वारा भेदप्ररूपक व्यवहारनयके सहारे व्यवहारी मनुष्य समझाया जाता है । वहाँ निर्मल पर्यायके वितर्क (विचार) में भी लक्ष्यको न रोकेकर समस्त गुणादिके अभेदरूप ज्ञायकमात्र पूर्ण आत्मा लक्ष्यमें लेना चाहिये ।

गुणगुणिनोर्भेदमुत्पाद्य प्रतिपादनप्रक्रियां श्रुत्वा भव्यो भेदं न पश्यति किन्त्वखण्डस्यात्मनोभेदानुभवने प्रयत्नशीलो वोभ वीति यतः पुनः सम्यग्दर्शनपर्यायमप्यनवलोक्य सम्यग्दर्शनविषयभूतपूर्णाखण्डध्रुवस्वभावमयमात्मानमनुभवति । सम्यग्दर्शनस्य पर्यायरूपत्वेन सम्यग्दर्शनपर्यायलक्ष्येनापि तस्यखण्डास्य बिकासासम्भवः ।

गुण और गुणीके भेदको उत्पन्न कराके प्रतिपादन करनेकी प्रक्रिया को सुनकर भव्यजीव भेदको नहीं देखता है, किन्तु अखण्ड आत्माके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभेद अनुभवनमें बार बार प्रयत्नशील होता है जिससे कि फिर सम्यग्दर्शनकी पर्यायको भी न देखकर सम्यग्दर्शनके विषयभूत पूर्ण अखण्ड ध्रुवस्वभावमय आत्माको अनुभवता है। सम्यग्दर्शन पर्यायरूप है इस प्रकारसे भी सम्यग्दर्शन पर्यायके द्वारा भी उस अखण्ड आत्माका विकास असम्भव है।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

अब पदोंकी व्याख्या की जाती है—

जह—यथा येन प्रकारेण, (वक्ष्यमाणेन)।

जह—यथा—जिस प्रकारसे अर्थात् आगे कहे जानेवाले जिस प्रकारसे।

णबि—नापि-अपिशब्दो दृढ़तापूर्वकवर्णने समस्ति नेति च निषेधे।

णवि—नापि—अपि शब्द तो दृढ़तापूर्वक वर्णन करनेमें आया है और न शब्द निषेध में आया है।

सक्कं—शक्यः सामर्थ्यविषयः शक्तुं योग्यः शक्यः।

सक्कं—शक्यः अर्थात् सामर्थ्यका विषयभूत। अथवा जो शक्त (समर्थ) होनेके योग्य हो उसे शक्य कहते हैं।

अणज्जो—अनार्यः म्लेच्छः संस्कृतभाषानभिज्ञः। अत्राना-र्यदृष्टान्तस्य आर्यभाषाप्रयुक्तशब्दार्थानभिज्ञताप्रयोजकत्वम्।

अणज्जो—अनार्यः अर्थात् मलेच्छ, संस्कृत भाषासे अनभिज्ञ। यहाँ अनार्यका दृष्टान्त आर्यभाषायें बोले गये शब्दोंके अर्थकी अनभिज्ञता (अजानकारी) का प्रयोजक है।

अणज्जभासं विणा—अनार्यभाषां बिना—अनार्यमातृभाषा-प्रयोगेण विना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणज्जभासं विणा—अनार्य भाषाके बिना अर्थात् अनार्य पुरुषोंकी जो मातृभाषा है उसके प्रयोगके बिना।

गाहेउं—ग्राहयितुं-अर्थं ग्राहयितुं अर्थग्रहणरूपेण संबोधयितुम्।

गाहेउं—ग्राहयितु—अर्थ ग्रहण करानेके लिये अर्थात् अर्थग्रहणरूप से संबोधित करने (समझाने) के लिये।

तह—तथा तेन प्रकारेण लौकिकदृष्टान्तपद्धतिवत्।

तह—तथा—उस प्रकारसे अर्थात् इस लौकिक दृष्टान्तकी पद्धति की तरह।

ववहारेण विणा-भेदोत्पादकव्यवहारनयेन बिना।

ववहारेण विणा—भेद उत्पन्न करनेवाले व्यवहारनयके बिना।

परमत्थुवएसणं—परमार्थोपदेशनं-परमार्थस्योपदेशनम्।

परमत्थुवएसणं—परमार्थोपदेशनं—परमार्थका उपदेश करना।

असक्कं—अशक्यं, शक्यं न भवति।

असक्कं—अशक्यं, शक्य नहीं होता है।

जह अणज्जो अणज्जभासं विणा गाहेउं ण सक्कं—यथा अनार्यो म्लेच्छः म्लेच्छभाषाप्रतिपादनेन बिना संस्कृत—भाषा-प्रयुक्तशब्दार्थं कथमप्यवबोधयितुं न शक्यः।

जह अणज्जो अणज्जभासं विणा गाहेउं ण सक्कं—जैसे अनार्य पुरुष (म्लेच्छ पुरुष) मलेच्छ भाषाके प्रतिपादनके बिना संस्कृत भाषामें प्रयुक्त शब्दके अर्थको किसी भी प्रकार समझाये जानेके लिए शक्य नहीं है।

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं—तथा गुण-गुणिभेदप्रतिपादनेन विनावक्तव्यसनातनाखण्डार्थोपदेशः अपि ग्राहयितुमशक्य एव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं—उसी प्रकार गुण गुणीके भेदके प्रतिपादनके बिना अवक्तव्य सनातन अखण्ड अर्थका उपदेश भी ग्रहण कराया जाना अशक्य ही है।

इदमत्र तात्पर्यम्—सूरयः परमार्थतत्त्वानुभविनोनुभूततत्त्वं यथानुभवे समासोत् तथा प्रतिपादयेयुरत्र न कोप्युपायः। अनुभूतोर्थः अनुभवगम्य एव तथापि मुमुक्षुशिष्याग्रहेण करुणया च प्रमत्ताः सन्तस्तं विध्युपदेशेन गुणगुणिभेदव्यपदेशेन प्रतिपादयन्ति। अतः व्यवहारः प्रयोजकस्तथापि विधिदृष्टिं गुण गुणिभेददृष्टिं विहायाभेदरूपपरमार्थ एव लक्षितव्यः।

यहाँ यह तात्पर्य है कि परमार्थ तत्त्वका अनुभव कर लेनेवाले आचार्य देव जैसा कि उनके अनुभवमें परमार्थ तत्त्व था वैसा प्रतिपादन कर देते इसका और कोई भी उपाय न था। अनुभूत तत्त्व तो अनुभवगम्य ही है तो भी मुमुक्ष शिष्यके आग्रहसे करुणा करके प्रमत्त होते हुए आचार्यदेव उस मुमुक्षु शिष्यको विधिके (व्यवहारके) उपदेशसे गुण गुणीके भेदके व्यपदेशके द्वारा कह रहे हैं। इस कारण व्यवहार प्रयोजनवान है तो भी विधिकी दृष्टिको छोड़कर अभेदस्वरूप परमार्थ ही लक्ष्यमें लाना चाहिये।

ननु किं व्यवहारोसत्यो यतो व्यवहार अनाश्रयणीयः स्यादिति चेन्न यथा द्रव्यस्य द्रव्यरूपत्वात्सत्यत्वं तथा पर्यायस्यापि द्रव्यपरिणतित्वात्सत्यत्वं। पर्यायस्यासत्यत्वे परिणमनस्यासद्भावत्वेन द्रव्यस्याप्यभावः स्यात् पर्यायशून्यास्यर्थस्य खरशृङ्गकल्पत्वात् तथापि यथा द्रव्यस्य द्रव्यत्वं त्रैकालिकमविनश्वरमेकरूपं, न तथा तस्य परिणमनं त्रकालिकमविनश्वरादि। तस्मात्पर्यायप्ररूपको व्यवहारोभूतार्थो निगद्यते।

तो क्या व्यवहार असत्य है जिससे कि व्यवहार आश्रय करनेके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य नहीं कहा इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं— कि ऐसा नहीं है क्योंकि जैसे कि द्रव्यकी द्रव्यरूपतासे सत्यता है वैसे पर्यायकी भी परिणतिके रूपसे सत्यता है। पर्यायको सर्वथा असत्य मानने पर परिणमनका भी अभाव हो जावेगा क्योंकि पर्यायशून्य पदार्थ तो गधेके सींगकी तरह है, अर्थात् पदार्थ ही नहीं है, तो भी जैसी द्रव्यकी द्रव्यता त्रैकालिक है, अविनश्वर है व एकरूप है उस तरह द्रव्यका परिणमन त्रैकालिक अविनश्वर आदि नहीं है। इसी कारण पर्यायका प्ररूपण करनेवाला व्यवहार अभूतार्थ कहा जाता है।

किंच क्षणिकपर्यायलक्ष्ये लक्ष्यस्य क्षणिकत्वात् ध्यान विषयसनातनताभावेनैकाग्र्यस्याभावः अनकाग्रये तु ध्यानमपि न संभवति निर्विकल्पकस्थितिर्दूरमास्ताम्। अखण्डाविश्वर द्रव्यलक्ष्ये चोपादानकारणसदृशं कार्यमिति न्यायेन निर्विकल्पध्यानोपायेन कारणसमयसारानुरूपकार्यसमयसारनिष्पत्तिरिति निश्चयनयो भूतार्थ इति दिक्। ततो व्यवहारनयोपायेन तत्त्वमवगम्य तत्त्वमेव लक्षितव्यमिति भावार्थः।

और भी क्या, क्षणिक पर्यायका लक्ष्य होने पर चूंकि वह लक्ष्य अथवा लक्ष्यभूत पर्याय क्षणिक है सो ध्यानके विषयकी सनातनता (स्थिरता) न होनेसे एकाग्रताका अभाव है, और एकाग्रता न होनेपर तो ध्यान भी सम्भव नहीं है, निर्विकल्प स्थितिकी बात तो दूर ही रही। और, अखण्ड अविनश्वर द्रव्यका लक्ष्य होने पर "उपादान कारणके सदृश कार्य होता है"। इस न्यायसे निर्विकल्पध्यानके उपायके द्वारा कारणसमयसारके अनुरूप कार्यसमयसारकी निष्पत्ति होती है इस प्रकार निश्चयनय भूतार्थ है यह दिग्दर्शन युक्त ही है। इस कारण व्यवहारनयके उपायसे तत्त्वको जानकर तत्त्व ही लक्ष्यमें लेना चाहिये यह भावार्थ (सारार्थ) हुआ।

ननु व्यवहारस्य कथं परमार्थप्रतिपादकत्वं व्यवहारस्य भेदरूपत्वादिति चेद्दृष्टान्तपुरःसरमुच्यते—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ शंका होती है कि व्यवहार तो भेदरूप है फिर वह परमार्थ (अभेद) का प्रतिपादक कैसे हो सकता है ? इसके उत्तरमें दृष्टान्त-पूर्वक समाधान करते हैं —

जो हि सुएण हि गच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिसिमिणो भणंति लोयप्पईवयरा ॥९॥

जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुयकेवली तम्हा ॥१०॥

सकलागमपारगो युक्तिस्वानुभवसमुलब्धविशदात्मतत्त्वो यो भावश्रुतेन शुक्लध्यानरूपस्वसंवेदनज्ञानेन निर्विकल्पसमाधिनागमज्ञानोपयोगेन वा पारिणामिकभावानुभवरीत्या ज्ञानस्य स्वात्मन्येव क्रियोत्पत्तेः केवलमसहायं शुद्धमद्वैतं रागादिरहितं निजात्मानमभिगच्छति तं सकलागमपारगत्वाल्लोकप्रकाशकत्वमापन्नाः परमर्षयः परमार्थतः श्रुतकेवलीत्यभिष्टुवन्ति । यश्च सर्वं श्रुतज्ञानं जानाति स व्यवहारेण श्रुतकेवलीति गणधरदेवा ब्रुवंति । अत्र य एवान्तदृष्टया परमार्थश्रुतकेवली स एव तज्ज्ञानविषयव्यप देशतो व्यवहारश्रुतकेवली । नात्र सकलागमावबोधविरहितः कश्चिदितरः सामान्यसम्यग्दृष्टिर्निश्चयश्रुतकेवलित्वेन विविक्षितः एकत्रैव व्यवहारस्य परमार्थप्रतिपादनस्य प्रकृतत्वात् । यथा हि घटज्ञानी घटज्ञानविषयावच्छिन्नत्वाद्भिन्नघटपदार्थं जानातीति भेदेभेदोपचाराद्व्यवहारेण घटज्ञानी । तेन व्यवहारेण घटज्ञेयाकारनिष्ठज्ञानव्यक्त्या परमार्थतः स्वात्मन्येव क्रियोत्पत्तेर्घटज्ञानस्य स्वात्मरूपत्वात् स्वं तथात्मानं जानातीति परमार्थस्य प्रतिपाद्यत्वाद्घटज्ञानीति व्यवहार प्रयुज्यते । तथा सर्वश्रुतज्ञानी सर्वश्रुत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयावच्छिन्नत्वाद्भिन्नं श्रुतविषयं जानातीति भेदेभेदोपचारा-द्व्यवहारेण द्वादशांगश्रुतज्ञानी । तेन व्यवहारेण सर्वश्रुतज्ञेया-कारनिष्ठज्ञानव्यक्त्या परमार्थतः स्वात्मन्येव क्रियोत्पत्तेः सर्व-श्रुतज्ञानस्य स्वात्मरूपत्वात्स्वं तथात्मानं केवलं जानातीति परमार्थस्य प्रतिपाद्यत्वाच्छ्रुतकेवलीति व्यवहारः प्रयुज्यते ।

जो हि सुएए हि गच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पईवयरा ।। ९ ।।
जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुयकेवली तम्हा ।। १० ।।

समस्त आगमके पारको प्राप्त हुआ व युक्ति स्वानुभवसे प्राप्त किया है विशद आत्मतत्त्व जिसने ऐसा जो अन्तरात्मा भावश्रुतके द्वारा शुक्लध्यानरूप स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा निर्विकल्प समाधिके द्वारा व आगमज्ञानके उपयोगके द्वारा पारिणामिकभावके अनुभवकी रीतिसे ज्ञानकी स्व आत्मामें ही क्रियाकी उत्पत्ति होनेसे केवल, असहाय, शुद्ध, अद्वैत, रागादिरहित निज आत्माको जानता है उसको समस्त आगमके पारको प्राप्त हो जानेके कारण लोकके प्रकाशपनेको प्राप्त हुए पूज्य परमर्षिगण "परमार्थसे श्रुतकेवली है" ऐसा स्तवते हैं अथवा कहते हैं। और, जो समस्त श्रुतज्ञानको जानता है वह व्यवहारसे श्रुतकेवली है ऐसा गणधरदेव कहते हैं। यहाँ जो ही अन्तर्दृष्टिसे परमार्थश्रुतकेवली है वह ही उस ज्ञानके विषयके व्यपदेश (नाम) से व्यवहारश्रुतकेवली है। यहाँ समस्त आगमके ज्ञानसे रहित कोई अन्य सामान्यसम्यग्दृष्टि निश्चयश्रुतकेवलीके रूपसे विवक्षित नहीं है अर्थात् उसे निश्चयश्रुत-केवली नहीं कहा गया है, क्योंकि एक ही जगह (एक ही पदार्थमें) व्यवहारके परमार्थप्रतिपादनका प्रकरण है। जैसे कि घटज्ञानी घटज्ञान के विषयसे अवच्छिन्न (युक्त) होनेसे भिन्न घट पदार्थको जानता है ऐसा भेदमें अभेदके उपचारसे घटज्ञानी कहा जाता है। उस व्यवहारसे घटज्ञेयाकारमें रहनेवाले ज्ञानकी प्रकटतासे, चूँकि परमार्थसे स्वआत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८-२-८०

में (अपनेमें) ही क्रियाकी उत्पत्ति होती है अतः घट ज्ञान स्वात्मरूप होनेसे वह ज्ञान उस प्रकारके (घटज्ञेयाकारनिष्ठ) स्व आत्माको जानता है इस तरह परमार्थ प्रतिपाद्य हो जानेसे वह घटज्ञानी है ऐसा व्यवहार प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार सर्वश्रुतज्ञानी सर्वश्रुतके विषयसे अवच्छिन (युक्त) होनेसे भिन्न श्रुतविषयको जानता हैं इस प्रकार भेदमें अभेदका उपचार होनेसे व्यवहारसे द्वादशाङ्गश्रुतज्ञानी कहा जाता है। उस व्यवहारसे सर्वश्रुतज्ञेयाकारमें रहनेवाले ज्ञानकी प्रकटता से, चूंकि परमार्थसे स्व आत्मामें (अपनेमें) ही क्रियाकी उत्पत्ति होती है सो सर्वश्रुतज्ञान स्वात्मरूप होनेसे उस प्रकारके (सर्वश्रुतज्ञेयाकार-निष्ठ) स्व आत्माको जानता है इस तरह परमार्थ प्रतिपाद्य हो जानेसे वह श्रुतकेवली है ऐसा व्यवहारका प्रयोग किया जाता है।

यतो हि सर्वश्रुतज्ञानमात्मैव ज्ञानतादात्म्यस्यात्मन्येवोपपत्तेस्तथा सति च यः सर्वं श्रुतं द्वाद्वशांगांगप्रकीर्णकमयं जानातीतिकथने तथा भूतज्ञानमयमात्मानं जानातीत्यायाति स च परमार्थ एव। अत्र हि भावश्रुतज्ञानमयस्यात्मनः परमार्थस्य परिचयाय सर्वश्रुतज्ञानगुणपर्यायभेदेन व्यपदिश्यतो व्यवहारनयस्य प्रयासः। तथैव चानन्तगुणाभेदरूपस्यैकद्रव्यनिष्पीतानन्तपर्यायस्य चैतन्यमयस्यैकस्वभावस्य परिचायाय यो वस्तुयाथात्म्यावलोकनस्वभावरूपं दर्शनं यथार्थसंवेदनस्वभावं ज्ञानं आत्माचरणस्वरूपं चारित्रमततीत्यात्मेति गुणगुणिनो भेदेन व्यपदिश्यतो व्यवहारनयस्य प्रयासः।

चूंकि सर्वश्रुतज्ञान ज्ञानके तादात्म्यकी आत्मामें ही निष्पत्ति होनेसे आत्मा ही है सो ऐसा होनेपर जो द्वादशाङ्ग अङ्गप्रकीर्णमय सर्व श्रुतको जानता है ऐसे कथनमें उस प्रकारके ज्ञानमय आत्माको जानता है यह बात आ जाती है और यह बात परमार्थ ही है। यहाँ तो भावश्रुतज्ञानमय परमार्थकभूत आत्माके परिचयके लिये सर्वश्रुतज्ञानरूप गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायके भेदसे व्यपदेश करनेवाले व्यवहारनयका यह प्रयास है। और, उस ही प्रकार अनन्त गुणोंके अभेदरूप व एक स्व द्रव्यमें ही पी ली गई है अनन्त पर्यायें जिसकी ऐसे चैतन्यमय एक स्वभावके परिचयके लिये "जो वस्तुके यथार्थस्वरूपके अवलोकनस्वभावरूप दर्शनको, यथार्थ संवेदनस्वभावरूप ज्ञानको व आत्माके आचरणस्वरूप चारित्रको प्राप्त होता है वह आत्मा है" इस प्रकार गुण गुणीके भेदसे व्यवपदेश (व्यवहार) करनेवाले व्यवहारनयका प्रयास है।

अथवा यो द्रव्यश्रुतधारेणोत्पन्नेन भावश्रुतरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन केवलं शुद्धमात्मानं जानति स श्रुतकेवलीति परमार्थश्रुतकेवली। यश्च स एव यदा स्वशुद्धात्मानं न भावयति बहिर्विषयं द्रव्यश्रुतार्थं जानात्यसौ व्यवहारश्रुतकेवली। अत्र परमार्थश्रुतकेवलिनो व्यवहारतया द्रव्यश्रुतार्थज्ञत्वं, व्यवहारश्रुतकेवलिनश्च परमार्थतया तथाभूतज्ञानमयात्ममात्रज्ञत्वं प्रमाणसम्मतमेव।

अथवा जो द्रव्यश्रुतके आधारसे उत्पन्न हुए भावश्रुतरूप स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा केवल शुद्ध आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली इस प्रकार परमार्थश्रुतकेवलीकी व्याख्या करना चाहिए। और, जो वही जिस समय निज शुद्धात्माको नहीं भाता है (निज शुद्ध आत्माकी भावना नहीं करता है व बहिर्विषयक द्रव्यश्रुतके अर्थको जानता है सो यह व्यवहारश्रुतकेवली है। यहाँ परमार्थश्रुतकेवली के ही व्यवहारसे द्रव्यश्रुतके अर्थका ज्ञातापना कहा गया है और व्यवहारश्रुतकेवलीके परमार्थ से उस प्रकारके (द्रव्यश्रुतके ज्ञेयाकाररूप से) ज्ञानमय आत्मामात्र का ज्ञातापन कहा गया है जो कि सब प्रमाण सम्मत ही है।

अन्यच्च यथा यः केवलज्ञानेन केवलं शुद्धमात्मानं जानातीति स केवलीति परमार्थो यश्च स एव क्षीणसकलाज्ञानावरणत्वेन युगपत्समाक्रांतविश्वद्रव्यक्षेत्रकालभावतया सर्वं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानात्यसौ केवलीति व्यवहारः। अत्राप्ययं व्यवहारः परमार्थमेव प्रतिपादयति न किञ्चदप्यतिरिक्तम्। कुतः ? यतो हि विश्वज्ञेयाकारनिष्ठासौ ज्ञप्तिरात्मानात्मा वा। न तावदनात्मा सकलस्याप्यनात्मनो ज्ञप्तिक्रियातादात्म्याभावात्। ततो विश्वज्ञेयाकारनिष्ठज्ञप्तिव्यवस्थितं ज्ञानमात्मैवेति हेतोर्यः सर्वं जानतीत्यभिभाषणे यः सकलज्ञेयनैमित्तिकीभूतांतर्ज्ञेयाकारस्वरूपाधिष्ठातारं केवलमात्मानं जानाति स केवलीत्यायाति। एवं ज्ञानज्ञानिनो भेदेन व्यपदिशता व्यवहारेण परमार्थ एव प्रतिपादितः। तथा दार्ष्टान्तिकीभूतात्मज्ञानोपायेपि निदिध्यासितव्यम्।

और भी,—जैसे जो केवल ज्ञानके द्वारा केवल शुद्धआत्माको जानता है वह केवली है यह परमार्थ है और जो वही समस्त ज्ञानावरण कर्म नष्ट हो जाने के कारण एक साथ समस्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके मानों आक्रमण हुएकी रीतिसे समस्त अर्थोंको जानता है वह केवली है यह व्यवहार है। यहाँ भी यह व्यवहार परमार्थको ही बताता है अन्य कुछ भी अतिरिक्त को नहीं। क्यों ? यों कि—समस्त ज्ञेयाकार में रहनेवाली यह ज्ञप्ति आत्मा है या अनात्मा ? अनात्मा तो है नहीं, क्योंकि समस्त जो अनात्मा है उसका ज्ञाप्तिक्रियासे तादात्म्य नहीं है। इस कारण समस्त ज्ञेयाकारमें रहनेवाली ज्ञाप्तिमें व्यवस्थित ज्ञान आत्मा ही है इस हेतुसे जो सर्वको जानता है ऐसे कथनोंमें जो समस्त ज्ञेयके नैमित्तकभूत (निमित्तसे होनेवाले) अन्तर्ज्ञेयाकार स्वरूपके अधिष्ठाता केवल आत्माको जानता है वह केवली है यह सिद्ध होता है। इस प्रकार ज्ञान ज्ञानीके भेदसे व्यपदेश करनेवाले व्यवहारके द्वारा परमार्थ ही प्रतिपादित हुआ। उसी तरह इस दृष्टान्तके दृष्टन्तिरूप आत्मज्ञानके उपायमें भी सनिश्चय कर लेना चाहिए।

अथवा यो निश्चयतो भावश्रुतेनाखण्डमेकज्ञायकस्वभावं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवं केवलं निजात्मानं स्थैर्येण ज्ञातवानसौ परमार्थतः श्रुतकेवली यश्चाखण्डंचैतन्यमयमात्मानं लक्षयित्वा तत्परिणमनवितर्केवतिष्ठते स व्यवहारेण श्रुतकेवली। स्वतन्त्रोहं ज्ञानमात्रमेवाहमिति भावना यद्यपि रागांशमिश्रितो वितर्को मनोविकल्पस्तथापि तस्यात्मविषयतया प्रवर्तमानत्वेन परमार्थदर्शकोत एव स व्यवहारेण श्रुतकेवली। इत्थमपूर्णश्रुतज्ञानेनापिसकलश्रुतविपाकीभूतपूर्णात्मविषयीकरणात् पृथक्त्वैकत्ववितर्कशुक्लध्यानप्रायोग्यः श्रुलकेली। अथवा स परिपूर्णात्मदर्शी श्रुतकेवली भविष्यतीति द्रव्यनिक्षेपमयव्यवहारेण श्रुतकेवली। कैवल्यस्य श्रुतकेवलित्वपूर्वत्वात् "शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः" इति वचनाच्च।

अथवा जिसने निश्चयसे भावश्रुतके द्वारा अखण्ड एक ज्ञायकस्वभावी ध्रुव केवल निज आत्माको स्थिरतासे जाना वह परमार्थतः श्रुतकेवली है और जो अखण्ड चैतन्यमय आत्माको लक्ष्य करके उस रूप परिणमनके वितर्कमें ठहरता है वह व्यवहारतः श्रुतकेवली है। "मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं ज्ञानमात्र ही हूँ" यह भावना यद्यपि रागांशमिश्रित वितर्क है, मनका विकल्प है तो भी वह वितर्क आत्माको विषय करके प्रवर्तमान होनेसे परमार्थका दर्शक है; इसी कारण वह ज्ञानी व्यवहार श्रुतकेवली है। इस प्रकार अपूर्ण श्रुतज्ञानके द्वारा भी समस्त श्रुतके फल स्वरूप पूर्ण आत्माको विषय करनेसे पृथक्त्ववितर्कविचार व एकत्ववितर्कविचार शुक्लध्यानके प्रयोग कर सकने योग्य श्रुतकेवली है। अथवा वह परिपूर्ण आत्माके स्वरूपका द्रष्टा श्रुतकेवली होगा। इस प्रकार द्रव्यनिक्षेपमय व्यवहारसे श्रुतकेवली है। क्योंकि, कैवल्य श्रुतकेवलीपने पूर्वक है अर्थात् केवल ज्ञान श्रुतकेवलज्ञानपूर्वक है और तत्वार्थसूत्रमें ऐसा कहा भी है—"शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः"।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो—निजसर्वश्रुतावबोधपरिणत्या स्वचतुष्टये परिणम्य-कर्तृकर्मक्रियाव्यतिरिक्तवस्तुतया स्वस्य क्रियाविषयत्वमापन्नो यः कर्ता।

अब पदों की व्याख्या की जाती है—

जो :—निज सर्व श्रुतज्ञान की परिणति से अपने चतुष्टयमें परिणमन करके कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों से अभिन्न एक वस्तुपना होने से अपनी ही क्रियाके विषयभावको प्राप्त जो (यह कर्ता कारक शब्द है)। यह जो पद का अर्थ हुआ।

हि—स्फुटं, निश्चयतो, निश्चयनयेन वा स्वकीयकर्तृ-कर्मक्रियैकत्वदृष्टिपुरःसराध्यात्मप्रज्ञप्तेः।

हि :—स्फुटरूपसे, निश्चयसे, अथवा निश्चयनयसे अपने आपमें ही कर्ता, कर्म, क्रियाके एकत्वकी दृष्टिपूर्वक अध्यात्मतत्त्वकी प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) ज्ञाप्ति (ज्ञान) होने से। यह हि शब्द का अर्थ हुआ।

सुएण—निर्विकारज्ञानस्वभावकारणोपादानप्रविशत्सर्वश्रुत-ज्ञानोपयोस्यन्दि स्वसंवेदनज्ञानरूपभावश्रुतेन।

सुएण :—निर्विकार ज्ञानस्वभाव कारणके उपादानमें प्रवेश करता हुआ जो सर्व श्रुतज्ञानका उपयोग उससे झरने वाले अर्थात् प्रकट होने वाले स्वसंवेदन ज्ञानरूप भावश्रुतके द्वारा। यह "सुएण" पद का अर्थ हुआ।

अहिगच्छइ—अभिगच्छति अभि समन्तात् विकल्परहित-त्वेन पूर्णैकदृष्टयाधिष्ठानतया वा सर्वप्रदेशैकव्यापारेणानन्त-शक्तितया सर्वगुणाभेदमयानुभवेन गच्छति जानात्यनुभवति।

अहिगच्छइ :—अभिगच्छति—अभि याने निज समस्त क्षेत्रमें विकल्परहितपना होनेसे, पूर्ण एक दृष्टिसे अभेद आधारपना होनेसे, सर्व प्रदेशोंमें एक व्यापार (पुरुषार्थ) के कारण अनन्तशक्तिपना होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से सर्व गुणोंके अभेदमय अनुभवके द्वारा गच्छति अर्थात् जानता है अनुभवता है। यह अभिगच्छइ का अर्थ हुआ।

केवलं—निजसत्ताक्रमसहायं स्वयं स्वसर्वस्वतावच्छिन्नम् ।

केवलं :—निज सत्तामात्र असहाय याने अन्य किसी भी पर या परभावकी सहायतासे रहित स्वयंको याने मात्र निजसर्वस्वको। यह केवलं का अर्थ हुआ।

सुद्धं—परसत्तया रहितं त्रिकालेष्वनुगतं चैतन्यसामान्यात्मानं स्वयं रागादिरहितम् शुद्धम् ।

सुद्धं :—परसत्तासे रहित, तीनों कालोंमे अनुगत, चैतन्यसामान्यात्मक स्वयं रागादिरहित से ऐसा सुद्ध।

इणं—इमं स्वसंवेदनप्रत्यक्षविषयीभूतम् ।

इणं :—इस स्वसंवेदन प्रत्यक्ष विषयीभूत (कर्म कारक)।

अप्पाणं—दर्शनज्ञानचारित्रादीनि सततमतमानं निजम् ।

अप्पाणं :—दर्शन ज्ञान चारित्रको निरन्तर अतमान अर्थात् पाने वाले निजको याने अपने आपको।

तं—अभिन्नषट्कारकतया प्रवर्तमानं पूरोक्तं तं पुरुषम् ।

तं :—अभिन्न षटकारक रूपसे प्रवर्तमान पूर्वोक्त उस पुरुष को अर्थात् आत्माको। (जो भावश्रुतके द्वारा इस केवल शुद्ध आत्माको जानता है उस आत्माको यह सम्बन्धार्थ हुआ)।

लोयप्पदीवयरा—लोकप्रदीपकाः सम्यग्मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानधारित्वेन श्रुतेन परोक्षतया लोकालोकमयं सर्वं जानन्तः सर्वविधितरंगेण वादरवादरवादरवादरसूक्ष्मसूक्ष्मवादरसूक्ष्मसूक्ष्मसूक्ष्मत्रावच्छिन्नान् सर्वास्स्कंधाणून द्रव्यकर्मो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दयपशमक्षयोपशमजन्यं जीवतत्त्वं मनःपर्ययगर्हर्द्धिवलेन मनोविकल्पांश्च प्रकाशयन्तो गणधरदेवाः।

लोयप्पदीवदरा :—लोकप्रदीपक अर्थात् सम्यक् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञानके धारी होने से श्रुतज्ञानके द्वारा परोक्षरूपसे लोकालोकमय सर्व पदार्थको जाननेवाले, सर्वावधिज्ञान परिणमन के द्वारा वादर वादर वादर वादरसूक्ष्म सूक्ष्मवादर सूक्ष्म सूक्ष्म सूक्ष्म समस्त स्कन्ध और अणुवोंको व द्रव्यकर्मके उदय उपशम क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए जीवतत्त्व (जीव भाव) को एवं मनःपर्यायज्ञान रूप महर्द्धि के बलसे मनके विचारों को प्रकाशित करने वाले, जानने वाले गणधर देव। यह लोयप्पदीवयरा का अर्थ है।

इसिणो—ऋषयः विविधर्द्धिप्राप्ता निर्मलाः सर्वप्रमाणिभूताः

इसिणो :—ऋषि नाना प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त निर्मल सर्वको प्रमाणीभूत ऋषिजन। (कर्ताकारक)।

सुयकेवलि—परमार्थश्रुतकेवलिनम्।

सुयकेवलि :—परमाश्रुतकेवली। (कर्म कारक)।

भणंति—स्वयं तत्त्वमनुभूय प्रस्तावनाकाले याथातथ्यं कथयन्ति।

भणंति :—स्वयं तत्त्वका अनुभव करके प्रस्तावना (इसका प्रतिपादन करना) के कालमें जैसा यथार्थ है वैसा कहते हैं।

जो—स एव पूर्वोक्तो ज्ञेयाकारमयवाह्यरूपदृष्टिभूतो यः कर्ता।

जो :—वह ही पूर्वोक्त ज्ञेयाकारमय वाह्यरूपकी दृष्टि वाला जो। (कर्ता कारक)।

सव्वं—सर्वमाचारसूत्रकृत्स्थानसमवायव्याख्याप्रज्ञप्तिज्ञातृकथोपासकाध्ययनांतःकृद्दशानुत्तरोपपादिकदशप्रश्नव्याकरणवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाकसूत्रदृष्टिवादाङ्गमयं सामायिकचतुर्विंशतिस्तवाद्यंगबाह्य-मयं परिपूर्णं ।

सव्वं :—सर्व आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग, ज्ञातृकथाङ्ग, उपासकाध्ययनाङ्ग, अन्त:कृद्दशाङ्ग, अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरणाङ्ग, विपाकसूत्राङ्ग, दृष्टिवादाङ्ग-मय व सामायिकादिक अङ्गवाह्यमय परिपूर्ण ।

सुयणाणं—श्रुतज्ञानं द्रव्यश्रुतम् ।

सुयणाणं :—श्रुतज्ञानको अर्थात् द्रव्यश्रुतको ।

जाणादि—इदमेवेदृशमिति नि:शंकतया जानाति ।

जाणादि :—यह ही है ऐसा ही है ऐसा नि:शंकरूपसे जानता है ।

तं—अन्तर्बाह्यमयं द्रव्यपर्यायमयं पर्यायप्रधानतयनिरूप्य-माणं तं पुरुषम् ।

तं :—अन्तर्वाह्यमय याने द्रव्यपर्यायमन तत्त्वको पर्यायकी प्रधानता से निरूप्यमाण (देखे गये) उस आत्माको ।

जिणा—जिना: सर्वज्ञदेवा गणधरदेवा वा ।

जिणा :—जिन, सर्वज्ञदेव अथवा गणधर देव ।

सुदकेवलिं—सर्वद्रव्यश्रुतज्ञं व्यवहारश्रुतकेवलिनम् ।

सुदकेवलिं :—सर्व द्रव्यश्रुतके जानने वाले व्यवहारश्रुतकेवली ऐसा ।

आहु—आहु:ब्रुवन्ति सुव्यक्तं प्रकटीकुर्वन्ति ।

आहु: :—कहते हैं स्पष्टरूपसे प्रकट करते हैं ।

जम्हा—कुतो हि स आत्मज्ञो द्रव्यश्रुतकेवली निगद्यतेथवा द्रव्यश्रुतज्ञ आत्मज्ञो वेति प्रश्ने हेतुमाह यस्मात्कारणत् ।

जम्हा :—क्यों वह आत्मज्ञ द्रव्यश्रुतकेवली कहा जाता है अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह द्रव्यश्रुत आत्मज्ञ कहा जाता है ऐसा प्रश्न होने पर कारण कहते हैं कि जिस कारण से—

सव्वं णाणं—अत्र प्रकरणे सर्वद्रव्यश्रुतविषयतया व्यज्यमानं ज्ञप्तिमयं ज्ञानं आत्मसंवित्तिविषयं परपरिच्छित्तिविषयं वा।

सव्वं णाणं :—इस प्रकरण में सर्वद्रव्यश्रुतके विषमरूपसे प्रकट किया जाने वाला ज्ञप्तिमय ज्ञान, आत्मसंवेदन का विषय को अथवा परपरिच्छेदन का विषय।

अप्पा—आत्मा एव स्वस्य गुणानां स्वस्मिन्नेवक्रियानिष्पत्तेः स्वस्मादभिन्नत्वाच्च ज्ञानस्यात्मव्यतिरिक्ततयानुपलब्धेरात्मनो ज्ञानमयत्वाच्च।

अप्पा :—आत्मा ही है। इसके ये कारण हैं—(१) अपने गुणों की अपने में ही क्रिया हुआ करती है, (२) अपने गुण अपनेसे अभिन्न ही होते हैं, (३) ज्ञान आत्माको छोड़ कर अन्यत्र नहीं पाया जाता, (४) आत्मा ज्ञानमय है।

तम्हा—तस्मात्कारणात्–सतः सामान्यविशेषात्मकत्वात्।

तम्हा :—उस कारण से—क्योंकि सत् सामान्यविशेषात्मक हुआ करता है इस कारणसे।

सुदकेवली—श्रुतज्ञानस्यात्मव्यतिरिक्तत्वाभावात् श्रुतज्ञानं सर्वं जानातीत्यभिभाषणे तथाभूतज्ञानमयमात्मानं जानातीति निष्कर्षात्परमार्थंश्रुतकेवली, आत्मनो ज्ञानव्यक्तिव्यतिरिक्ततया निःपरिणामस्य खरशृंगकल्पत्वादभावप्रसंगात्तथाभूतज्ञानमयमात्मानं जानातीत्यभिभाषणे ज्ञानव्यक्तीनां स्वतःसिद्धत्वेन द्रव्यश्रुतकेवली भवति।

सुदकेवली :—श्रुतज्ञान आत्मासे पृथक् कहीं अन्यत्र नहीं है सो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त श्रुतज्ञानको जानता है ऐसा कहने पर उस प्रकार के ज्ञानमय आत्माको जानता है यह निष्कर्ष निकलनेसे यह श्रुतज्ञानी परमार्थश्रुत-केवली है, और आत्मा ज्ञानकी व्यक्तियों (विकासों) से भिन्न है ऐसा मानने पर तो चूंकि परिणमनशून्य तो खर (गधे) के सींग की तरह असिद्ध ही है सो आत्माके अभावका प्रसङ्ग आ जावेगा; अतः "उस प्रकारके ज्ञानमय आत्माको जानता है" ऐसा कहने पर ज्ञानकी व्यक्तियाँ (विकास) स्वतः ही सिद्ध हो जाने से यह निष्कर्ष निकला कि वह द्रव्यश्रुतकेवली है ।

इदमत्र तात्पर्यम्—यथा कः श्रुतकेवलीति प्रश्ने यः सर्वं द्रव्यश्रुतं जानाति स श्रुतकेवलीति ज्ञेयाकारनिष्ठव्यक्तिरूप-व्यवहारावलम्बनेन परमार्थश्रुतकेवली निर्दिश्यते तथा क आत्मेति प्रश्ने दर्शनज्ञानचारित्राण्यततीत्यात्मेति अनंतधर्मा-भेदात्मकात्मभेदकथनरूपव्यवहारालम्बनेन स्वसंवेद्यमात्रोऽप्या-त्मा निर्दिश्यते । कथं भेदकथनं व्यवहार इति चेद्भेदकथने भेद-दृष्टौ वा निर्विकल्पस्वसंवेदनगम्यपरमार्थात्माननुभवात् । तर्हि परमार्थप्रतिपादकः कथमिति चेदखण्डमात्मानं संलक्ष्य तत्संबंध एव भेदविचारस्य प्रवर्तितत्वात् तत्प्रतीतेरबाधितत्वात् ।

यहाँ यह तात्पर्य मिलता है कि—जैसे श्रुतकेवली क्या है ऐसा प्रश्न होने पर "जो सर्व द्रव्यश्रुतको जानता है वह श्रुतकेवली है" ऐसा ज्ञेया-कारनिष्ठ जो व्यक्ति (पर्याय) रूप व्यवहार उसके सहारे से परमार्थ-श्रुतकेवलीका निर्देश किया जा रहा है । वैसे ही आत्मा क्या है ऐसा प्रश्न होने पर "जो दर्शन ज्ञान चारित्रको सतत प्राप्त है वह आत्मा है" ऐसा जो अनन्तधर्मोंके अभेदात्मक आत्माका भेदकथनरूप व्यवहार उसके सहारेसे स्वसंवेद्यमात्र भी आत्माका निर्देश किया जा रहा है । भदका कथन करना व्यवहार कैसे है ऐसा पूछो तो यह उत्तर है कि भेदके कथनमें अथवा भेदकी दृष्टिमें निर्विकल्प स्वसंवेदनगम्य परमार्थ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूत आत्माका अनुभव नहीं होता अतः भेद कथन व्यवहार है। तो फिर व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक कैसे हुआ ऐसा कहो तो यह उत्तर है कि—अखण्ड आत्माको लक्ष्यमें लेकर उसके सम्बन्धमें ही तो यहाँ भेद विचार प्रवर्तित हो रहा है अतः परमार्थभूत आत्माकी प्रतीति भी यहाँ अबाधित है सो इस तरह व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक बन जाता है।

तथा च कोसौ शुद्ध आत्मा ? इत्यत्रायं निष्कर्षः—यो हि नामा नादिरनंतः स्वसहायोखण्डः स्वसंवेद्यमात्रश्चैतन्यस्वभावः स आत्मा तत्र रागादियोगो दूरमास्ताम् परमार्थात्मसम्पूर्ण-स्वरूपविघटनतया तत्र दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्यादिभेदोपि परमार्थात्मानुभवप्रस्तावे दुःसहस्ततः परमार्थात्मानुभवप्रस्तावे व्यवहारनयो नानुसर्तव्य इति दिक्।

ननु परमार्थप्रतिपादकः परमोपकारी व्यवहारनयः कुतो नानुसर्तव्य इति चेत् —

तथा च—यह शुद्धात्मा क्या है इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर यह निष्कर्ष लेना कि जो नाम करके अनादि, अनन्त, स्वसहाय, अखण्ड, स्वसंवेद्यमात्र चैतन्य स्वभाव है वह आत्मा है। उसमें रागादि का सम्बन्ध तो दूर ही रहा वहाँ तो परमार्थभूत आत्माके सम्पूर्ण एक स्वरूपका विघटन (पृथक् पृथक् विकलन) कर देनेके कारण "दर्शन ज्ञान चारित्र वहाँ है" ऐसा भेद भी परमार्थ आत्माके अनुभव के प्रस्ताव में दुःस्सह है। इस कारण परमार्थभूत आत्माके अनुभवके प्रस्तावम व्यवहारनयका अनुसरण नहीं करना चाहिए। यह दिग्दर्शन हुआ।

शङ्का—व्यवहारनय तो परमार्थका प्रतिपादक है सो परम उपकारी है उसका अनुसरण क्यों नहीं करना चाहिए। इस शंकाके समाधानमें आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि—

ववहारोभूयत्थो भूयत्थो देसिदो हुसुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहारनयः किल प्रतिक्षणध्वंसोत्पादैक्यसंज्ञिताध्रुवपरिणामप्रतिपादकत्वेन पृथक्स्वरूपास्तित्वनिर्वर्तितनिर्वर्तमानानेकद्रव्यसंबंधाभिधायित्वेन वस्तुनो निरपेक्षाभेदैक्यात्मकत्वेपि त्रैकालिकाक्रमवर्तिगुणानां प्रयोजकत्वेन चाभूतार्थप्रतिपादकत्वादभूतार्थः। शुद्धनयस्तु सकलगुणाभेदकपिण्डसामान्यविशेषात्मकवस्तुनिर्विशेषं समग्रैकज्ञायकभावप्रद्योतमानज्ञातृपरमार्थनेतृत्वाद्भूतार्थो देशितः। तत्र यः स्वविषयमात्रप्रतिपादकव्यवहारनयाविरोधेन मध्यस्थः सन् शुद्धाखण्डैकप्रतिभासमयनिजभूतार्थमाश्रयति स किलाभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिबलोपसंलब्धशुद्धात्मानुभवितृत्वान्निश्चयेन सम्यग्दृष्टिर्भवति।

ववहारोभूयत्थो भूयत्थो देसिदो हु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइजीवो ॥११॥

व्यवहारनय तो प्रतिक्षण ध्वंस व उत्पादकी एकतासे संगित अध्रुव परिणामका प्रतिपादक होनेसे पृथक् पृथक् स्वरूपास्तित्वसे रचे गये व रच रहे अनेक द्रव्योंके संबंधको बतानेवाला होनेसे, वस्तुके निरपेक्ष अभेद ऐक्यात्मक होने पर भी त्रैकालिक अक्रमवर्ती गुणोंकी प्रयोजकता होनेसे अभूत अर्थका प्रतिपादक है अतः व्यवहारनय अभूतार्थ है। परन्तु शुद्धनय समस्त गुणोंके अभेद एक पिण्डरूप सामान्यविशेषात्मक वस्तुके निर्विशेष समग्र एक ज्ञायक भावमें प्रद्योतमान ज्ञाताको परमार्थमें ले जानेवाला होनेसे भूतार्थ कहा गया है। वहाँ जो अन्तरात्मा अपने विषयमात्रको प्रतिपादक व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होता हुआ शुद्ध अखण्ड एक प्रतिभासमय निज भूतार्थ तत्त्वका आश्रय करता है वह अभेद रत्नत्रयरूप निर्विकल्प समाधिके बलसे अपने आपमें प्राप्त हुये शुद्धात्मतत्त्वके अनुभविता होनेसे निश्चयसे सम्यग्दृष्टि होता है।

बाह्यार्थनिमित्तनिरपेक्षो निरुपाधिकपारिणामिकः स्वभावः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स एव त्रिकालगोचरत्वात्सदान्तःप्रकाशमानत्वाच्च भूतार्थः। बाह्यार्थसद्भावासद्भावनिमित्तसापेक्षो भावो गुणविकारः स च वर्तमानकालमात्रगोचरत्वात्स्वभावरूपताभावादभूतार्थः। पुण्यपापादिभावात्मीयबुद्धिविकारस्वादिनो न भूतार्थमुपलभंते। स ह्यात्मस्वभावो धर्मो न देहप्रवृत्या बाह्यसाधनेन वाविर्भाव्यो धर्मस्य धर्मिण्येव वर्तमानत्वेनान्यत्रान्यक्रियाभिर्विकासायोगात्। धर्मिसामान्यावलम्बनेनैव धर्मव्यक्तेः। स्वाधीनपूर्णाखण्डज्ञानानन्दमयनिजब्रह्मणो लक्ष्येनुभवे सहजानन्दः स्वयंसिद्धव्यक्ति इति भावः।

बाह्य पदार्थोंके निमित्तसे निरपेक्ष निरुपाधिक परिणामिक जो स्वाभाव है वह ही त्रिकालवर्ती होनेसे और सदा अन्तः प्रकाशमान होनेसे भूतार्थ है। वाह्य पदार्थके सद्भाव य अभावके निमित्तसे सापेक्ष भाव गुणविकार है और वह गुणविकार वर्तमानकालमात्रवर्ती होनेसे व स्वभावरूपताका अभाव होनेसे अभूतार्थ है। पूण्य पाप आदि भावोंमें आत्मीयबुद्धिके विकारका स्वाद लेनेवाले पुरुष भूतार्थको प्राप्त नहीं करते हैं। निश्चय से वह आत्मस्वभावरूप धर्म देहकी प्रवृत्तिसे अथवा बाह्य साधनसे प्रकट किये जा सकने के योग्य नहीं है, क्योंकि धर्म धर्मी में ही वर्तमान रहता है अतः अन्य पदार्थ में होने वाली क्रियाओंसे अन्य पदार्थमें विकास नहीं होता है। धर्मी सामान्यके अवलम्बनसे ही धर्म की व्यक्ति होती है। स्वाधीन पूर्ण अखण्ड ज्ञानानन्दमय निज ब्रह्मके लक्ष्यमें, अनुभवमें स्वयंसिद्ध है प्रकटपना जिसका ऐसा सहज आनन्द होता है, यह भाव हुआ।

किञ्च—देहप्रवृत्वादयः परमार्थत्मनो न व्यवहारस्ते खलूपचार एव। रागद्वेषादयश्चात्मस्वभावेप्रतिष्ठितत्वादसद्भूतव्यवहारः। मतिश्रुतादयोपूर्णावस्थास्तु निमित्तसापेक्षत्वात्क्षणिकत्वादनंतज्ञानादयश्च कर्मासद्भावनिमित्तजत्वात्सदृशतया निरं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तश्मपि प्रतिक्षणं प्रवर्तमानत्वादुपचरितसद्भूतव्यवहारः। केवलं यो निर्विकल्पज्ञानानन्दमयाखण्डपरमार्थस्वरूपात्मनो ध्रुवस्वभावभूतज्ञानादिगुणाभिधानतो भेदतया व्यपदिश्याव-बोधीकरणमनुपचरितसद्भूतव्यवहारः किलैष एव परमार्थप्रति-पादननिमित्तरूपो व्यवहारः। सोपि मनोविकल्पत्वात्परमार्थ-प्रतिपादनोपायत्वात्परमशुभरागः सम्यक्त्वानुभवपरिणितविल-क्षणत्वादभूतार्थः।

और क्या :—देह की प्रवृत्ति आदि तो परमार्थभूत आत्मा का व्यवहारभी नहीं है; वे सब तो उपचारमात्र हैं और राग-द्वेष आदिक विकार आत्मस्वभावमें प्रतिष्ठित न होनेसे असद्भूतव्यवहार हैं। मति-ज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक अपूर्ण अवस्थायें निमित्तसापेक्ष होनेसे और अनन्तज्ञान आदिक पूर्ण विकास कर्मके अभावके निमित्तसे उत्पन्न होने के कारण व सदृश सदृशरूपसे निरन्तरभी प्रतिक्षण प्रवर्तमान होनेसे यह सब उपचरित सद्भूत व्यवहार है। केवल (सिर्फ) निर्विकल्प ज्ञानानन्दमय अखण्ड परमार्थस्वरूप आत्माका ध्रुव स्वभावभूत ज्ञानादि गुणोंके निर्देशके द्वारा भेदरूपसे व्यपदेश करके जो समझने समझाने रूप अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है यह ही परमार्थके प्रतिपादनमें निमित्तरूप व्यवहार है। सो वह भी मनका विकल्प होनेसे व परमार्थ के प्रतिपादन करने का उपायभूत होनेसे परम शुभराग है, वह भी सम्यक्त्वके अनुभवकी परिणति से विलक्षण होनेसे अभूतार्थ है।

प्राक्सम्यक्त्वारम्भादनेकशुभप्रवृत्तयः उद्भवन्ति तत्र सन्नि-हितप्राक्पदस्थोपि भव्यो निश्चिनोति-पुण्यपापानां तत्फलानां तद्विपाकोपहारलब्धोपभोगानां च नाहं कर्ता क्रियाश्च ताः सर्वा न मे, कुगुर्वादिप्रतिपादिसिद्धान्ता न मे प्रयोजका इति। तस्य मुमुक्षोर्देवशास्त्रगुरुषु वहुमानो वोभवीति वीतराग प्रणीतधर्मे महादरः संजायते। स हि नवतत्त्वं परिलक्ष्याभेद-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैल्या निश्चित्यानंतरागं विहाय निर्विकल्पतत्त्वपरिणाताबुद्यमते। यद्यप्युक्तसर्वंतरंगव्यवहारो मुमुक्षोः संजायते तथापि तेषां यदि श्रद्धायामादरः स्यात्तांश्च गृह्णीयादेव चेदभूतार्थाश्रयणात्सम्यक्त्वानुभवो न भवति। सम्य क्त्वपूर्वांगतव्यवहारलक्ष्यं संब्रुट्याभेदस्वभावमयनिजब्रह्मानाकुलत्वलक्षणमुखसंवेदनमात्रास्वादो भवेत्तदा हि सम्यक्त्वानुभवो वर्तत एव। अत्र हि येषां सु विकल्पानां लक्षितलक्ष्यच्युतेरनंतरं सम्यकत्वानुभवो जातस्ते शुभविकल्पा उपचारेण सम्यकत्वनिमित्तं भवन्ति। यद्यपि सम्यक्तोवानुभवयोग्यतेयमुक्तशुभवि कल्पानन्तरं जातातो वितर्कव्यवहारोनिवारितसतद्भूस्तथापिसम्यक्त्वसाधकतमो विकल्पो नास्ति पर्यायमात्राणां लक्ष्यस्य ध्रुवोपयोगासाधकत्वात्। भूतार्थो हि विद्यमानोर्थः, सामान्यतत्त्वस्य वस्तुनो वा सदा विद्यमानत्वात्तदेव भूतार्थः सर्वप्रकारपर्यायाणां च स्वरूपलाभसमय एव विद्यमान त्वादितरकालेविद्यमत्वादभूतार्थः। अथवा स्वयंभूतार्थो हि भूतार्थः स्वयं न भूतः अर्थः स अभूतार्थः। सामन्यतत्त्वं, पर्यायाधिष्ठानमात्रं हि वस्तु स्वयं सदा सत्तालाभमापद्यते। पर्यायास्त्वने कोपाधिसन्निर्धिधावितक्षणिकस्वरूपनिष्ठत्वादभूतार्थाः।

सम्यत्त्वके आरम्भसे पहिले अनेक शुभ प्रवृत्तियां होती हैं उनमें पहिले रखा है कदम जिसने ऐसा भव्य जीव निश्चय करता है कि— पुण्य पाप भावोंका व उनके फलोंका तथा उनके विपाकके उपहारमें प्राप्त हुए उपभोगोंका न मैं कर्त्ता हूँ और न वे सब क्रियायें हैं एवं कुगुरु आदिकके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त मेरे प्रयोजक नहीं हैं अर्थात् मेरे प्रयोजन को (सत्य शान्तिको) सिद्ध करने वाले नहीं हैं। उस मुमुक्षु जीवके देव शास्त्र गुरुवोंमें बहुमान बार बार होता है, वीतराग प्रणीत धर्ममें महान् आदर उत्पन्न होता है। वह तो नव तत्त्वको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक् प्रकार समझकर अभेदशैलीसे निश्चित करके अनन्त राग को छोड़ कर निर्विकल्प तत्त्वकी परिणति में उद्यम करता है। यद्यपि उक्त सर्व तरंग (मनोविकल्प तरंगोंका) व्यवहार मुमुक्षु पुरुष के होता है तो भी उनको यदि श्रद्धा में आदर हो जाय और उनको ग्रहण ही करे तो अभूतार्थका आश्रय हो जानेसे उनके सम्यत्तत्त्व का अनुभव नहीं होता है। सम्यत्तत्त्वसे पहिले आये हुए व्यवहारके लक्ष्यको तोड़ कर अभेदस्वभावमय निज ब्रह्मके अनाकालतास्वरूप सुखसंवेदनामात्रका आस्वाद हो तो सम्यत्तत्त्वका अनुभव वर्तता ही है, होता ही है।

यहाँ यह दर्शाया गया है कि जिन उत्तम विकल्पोंका लक्ष्य किया गया था, फिर जिनका लक्ष्य छूट जाने के अनन्तर सम्यत्तत्त्वका अनुभव हुआ वे शुभ विकल्प भी उपचारसे सम्यत्तत्त्वके निमित्त कारण होते हैं। यद्यपि सम्यत्तत्त्वके अनुभवकी योग्यता उक्त शुभविकल्प के अनन्तर उत्पन्न हुई है इस कारण यह वितर्क व्यवहार अनिवारित सद्भूत है तो भी यह विकल्प व्यवहार सम्यत्तत्त्वका साधकतम नहीं है, क्योंकि मात्र पर्यायोंका लक्ष्य ध्रुवतत्त्वके उपयोगका या ध्रुव उपयोगका साधक नहीं हुआ करता। भूतार्थ तो विद्यमान अर्थको कहते हैं; सामान्य तत्त्व अथवा वस्तु सदा विद्यमान है अतः वह ही भूतार्थ है और सर्व प्रकार की पर्यायें अपने स्वरूप लाभके समयमें ही विद्यमान हैं अन्य (आगे व पीछे) काल में विद्यमान नहीं हैं अतः अभूतार्थ हैं। अथवा स्वयं होने वाले अर्थको भूतार्थ कहते हैं और जो स्वयं न हुआ अर्थ (परिणमन) है उसे अभूतार्थ कहते हैं। सामान्य तत्त्व कहो अथवा पर्यायका अधिष्ठान (आधार) मात्र वस्तु कहो, वह स्वयं व सदा सत्त्व को लिए हुए है, सो वह भूतार्थ है। परन्तु पर्यायें अनेक उपाधि की समीपतासे दौड़े हुए क्षणिक दशावोंमें निष्ठ होनेसे अभूतार्थ हैं।

अत्र हि त्रिकालगतैकस्वरूपं ध्रुवं भूतार्थं मुख्यतया लक्ष्यीकृत्याभेनदृष्टयाभेदानुभवं करोति स सम्यग्दृष्टिस्तस्याभेदलक्ष्यबलेन विकृतावस्था प्रलयं याति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहीं ही खुदमें जो त्रिकालवर्ती एकस्वरूप ध्रुव स्वभावको लक्ष्य करके अभेददृष्टिसे अभेदानुभव करता है वह सम्यग्दृष्टि है उसके इस अभेदलक्ष्यके बलसे विकार अवस्था प्रलयको प्राप्त होती है।

स्वभावे भूतोर्थो भूतार्थः स्वभावे न भूतोर्थोभूतार्थः। स्वभावोह्यात्मनोनाद्यनंताहेतुकासाधारणज्ञानमयस्तस्याखण्ड - स्वभावस्य लक्ष्यः प्रारंभिको धर्मस्तदतिरिक्ता बंधमोक्षादयः पर्याया दर्शनज्ञानचारित्रादिभेदवितर्कविकल्पाश्च न मर्म-स्वभावाः।

स्वभाव में हुआ अर्थ तो भूतार्थ है और जो स्वभावमें नहीं हुआ अर्थ है वह अभूतार्थ है। आत्माका स्वभाव अनादि, अनन्त, अहेतुक, असाधारण ज्ञानमय है; उस अखण्ड स्वभाव का लक्ष्य प्रारम्भिक धर्म है; उससे अतिरिक्त जो बन्ध मोक्ष आदिक पर्यायें हैं और दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदिक भेदवितर्कके विकल्प हैं वे धर्मस्वभाव नहीं हैं।

चेतना ह्यात्मस्वभावः सा च सामान्यविशेषात्मकत्वा-द्दृशिज्ञप्तिरूपा दृशिरूपव्यक्तेः शक्तिर्दर्शनशक्तिर्ज्ञप्तिरूपव्यक्तेः शक्तिर्ज्ञानशक्तिः। ते च किल ज्ञान दर्शनेविकारिण्येव यतो न किल पूर्वपरिचितविकारभावस्य ज्ञप्तिदृशिवर्तमानतायां कथंचनापि क्षणमपि प्रतिष्ठाभवति। तथैव चारित्रविकार-कालेपि ज्ञानदर्शन स्वरूपे न क्षणमपि प्रतिष्ठां स विकारः प्राप्तुमर्हति। इत्थमखि ललीलावैज्ञानिकः सर्वस्वरूपविज्ञान-कुलत्वेन ध्रुवमेवटङ्कोत्कीर्णं वन्निश्चलं भूतार्थमाश्रयति। तथा हि—यथा—निविडकीचस म्मिश्रणतिरोहितसहजस्वच्छ-भाव नीरमनुभवन्तो ग्राम्यजनाः कीच नीरयोर्विवेकमक्रिय-माणा अनवच्छमेव तत्पिवन्ति। विवेकिनस्तु स्वहस्तनिपाति-तकतफलनिक्षेपमात्रोपजनितकीचनीरभेदाविर्भावितसहजस्व -

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च्छभावं तत्पिबन्ति। तथा प्रबलकर्मावरणतिरोहित सहजैकज्ञायकभावं प्रवर्तमानाशुद्धोपयोगमनुभवन्तो निरुपाधिसोपाधिभावयोर्विवेकमक्रियमाणा मोहरागादिविभाव परिणामिनं मनुजादिपर्यायं स्वं मन्यमाना अभूतार्थाश्रयणाद् व्यवहारविमूढाः प्राणिनस्तमात्मानमनुभवन्ति। भूतार्थमाश्रयन्तः सम्यग्दृष्टयस्तु स्वस्वभावोन्मुखविज्ञानकरनिपातितशुद्धनयानुबोधमात्रोपजनितसोपधिनिरुपधिभावभेदाविर्भावितसहजैकज्ञायक स्वभावमात्मानमनुभवन्ति।

चेतना आत्मा का स्वभाव है और वह चेतना सामान्यविशेषात्मक होने से दर्शनज्ञानस्वरूप है। देखनेरूप परिणमनकी शक्ति को दर्शनशक्ति कहते हैं और जाननेरूप परिणमनकी शक्तिको ज्ञानशक्ति कहते हैं। और वे ज्ञान दर्शन दोनों गुण अविकारी ही हैं, क्योंकि ज्ञप्ति और दृशि (मात्र जानने और देखने) की अवस्था वर्तते हुएमें पूर्ण परिचित विकारभावकी किसी भी प्रकार क्षणभर भी प्रतिष्ठा नहीं होती और उसी प्रकार चारित्रके विकारकालमें भी ज्ञान दर्शन स्वरूपमें (स्वभावमें) क्षण भर भी वह विकार प्रतिष्ठा पानेके लिए समर्थ नहीं है। इस प्रकार समस्त लीला विज्ञानका अधिकारी अन्तरात्मा सर्वस्वरूपके विज्ञानमें कुशलता होनेसे नित्यही टङ्कोत्कीर्णवत् निश्चल भूतार्थ तत्त्वका आश्रय करता है और भी स्पष्ट—जैसे—घनी कीचके संमिश्रणसे तिरोभूत हो गया है सहज स्वच्छपना जिसका ऐसे नीरको अनुभवते हुए (पीते हुए) ग्रामीणजन कीच और नीरमें विवेक न करते हुए अनच्छ (अस्वच्छ) ही जल को पी लेते हैं। परन्तु, विवेकी पुरुष अपने हाथसे डाले गये कतकफल (निर्मली) के गिरनेमात्रसे उत्पन्न हुए कीच और जल में भेद (फाड़) से प्रकट हुई है स्वच्छता जिसमें ऐसे जल को पीते हैं। उसी तरह प्रबल कर्मके आवरणसे तिरोहित हुआ है सहज ज्ञायक स्वभाव जिसमें ऐसे प्रवर्तमान अशुद्ध उपयोगको अनुभवते हुए, निरुपधिभाव व सोपाधिभावमें विवेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न करते हुए, मोह राग आदि विभाव परिणामनवाले मनुष्यादिक पर्याय को स्व (आत्मा) मानने वाले, अभूतार्थ के आश्रय के कारण व्यवहार में विमूढ़ प्राणी उस ही अशुद्ध उपयोग व अन्य परिणमनको आत्मा-रूपसे अनुभव करते हैं। परन्तु भूतार्थ का आश्रय करनेवाले सम्यग्दृष्टि पुरुष स्वभावके उन्मुख विज्ञानरूपी हाथसे डाले गये शुद्धनयके अव-बोधमात्रसे उत्पन्न सोपाधिभाव य निरुपाधिभावमें भेद (पृथक्करण) से प्रकट हुआ है सहज एक ज्ञायकस्वभाव जिसका ऐसे आत्माका अनुभव करते हैं।

अथवा स्वविषयोर्थोभूतार्थोस्वभूतार्थोभूतार्थः। अत्र ह्यर्थो द्रव्यगुणपर्यायस्थितोस्तित्वनिर्वृत्तो निगदितः। यःस्वविषय-माश्रित्यानुभवविषयः स्वद्रव्यगुणपर्यायस्थितोर्थः स स्वः यश्च स्वं परं वा द्रव्यं स्वः परो बा गुणः स्वः परो वा पर्यायः स न स्वार्थस्तस्याध्रुवकालेन ध्रुवकालेन कालासद्भावेन वा विक-ल्पितत्वाभावात्। तथा हि—अध्रुवकालेनोत्पादमयेन संहार-भवेन समवेतः पर्यायः। ध्रुवकालेन त्रैकालिकापरसंज्ञितेन समवेतो गुणः। ध्रुवाध्रुवकालसमवेतं कालसद्भावासद्भाव-संकेतितं वा तत्त्वं द्रव्यम्। यश्च कालसद्भावासग्दावनिरपेक्षो-नुभवविषयः सामान्यविशेषसद्भाबासद्भावासंकलितः स्व सर्वः सोर्थोसौ च भूतार्थः। यो भूतार्थमाश्रयत्यनुवति स सम्यग्दृष्टि-रभिनन्द्यते। निरूपित भूतार्थव्यतिरिक्तान् शब्दादीन् व्यक्ति-ख्यातिप्रभृतिमनोविकल्पान् गुणरूपान् सकलशक्तिसमवाया-त्मकद्रव्यतत्त्वानि च संलक्ष्य विभूता रत्यरतिवृत्तयो न स्वः। तदस्वविकल्पदूरस्थः स्वद्रव्यगुणपर्यायस्थार्थसंवेदनपरिणतः किञ्च पश्चादपि तदर्थसन्बुखोपि स निश्चयेन सम्यग्दृष्टि-र्निर्णय इति दिक्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा जो स्वविषयक अर्थ तो भूतार्थ है और जो स्वविषयक नहीं किन्तु अन्य विषयक अर्थ है वह अभूतार्थ है। यहाँ द्रव्यगुण पर्यायमें स्थित अस्तित्व करि निर्वृत्त को अर्थ कहा गया है। जो स्व विषयका आश्रय करके अनुभवगोचर निज द्रव्य गुण पर्यायमें स्थिन अर्थ है वह स्व है और जो स्व या पर द्रव्य है स्व या पर गुण है स्व या पर पर्याय है वह स्व अर्थ नहीं है क्योंकि स्व अर्थ अध्रुवकालसे, ध्रुवकालसे या कालके अभावसे किसीसे भी विकल्पित नहीं है अर्थात् किसी भी विकल्पका गोचर स्व अर्थ नहीं है। इसका स्पष्ट भाव यह है—जो संहारके साथ होने वाले उत्पादमय अध्रुवकाल से समवेत (युक्त) है वह पर्याय है; जो त्रैकालिक है अपर नाम जिसका ऐसे ध्रुवकालसे समवेत है वह गुण है; जो काल के सद्भाव अभावसे संकेतित ध्रुव-काल व अध्रुवकालसे समवेत है वह द्रव्य है और जो काल के सद्भाव व असद्भावकी अपेक्षा न रखने वाला, अनुभवविषयक, सामान्यविशेष के सद्भाव व असद्भावसे भी असंकलित (परे) स्व सर्वस्व है वह अर्थ है और यह भूतार्थ है। जो भूतार्थका आश्रय करता है अनुभव करता है वह सम्यग्दृष्टि माना जाता है। निरूपण किये गये भूतार्थसे व्यतिरिक्त शब्दादिक का, पर्यायकी कीर्ति आदि सम्बन्धी मनके विकल्पों का, गुणोंका, समस्त शक्तियों में समवायात्मक द्रव्य तत्त्वोंका लक्ष्य करके उत्पन्न हुई रति अरति (राग द्वेष) रूप वृत्तियाँ स्व नहीं हैं। जो स्व नहीं हैं उनके विकल्पोंसे दूर रहने वाला, निज द्रव्य गुण पर्याय में स्थित अर्थके संवेदनसे परिणत पुरुष सम्यग्दृष्टि है; और क्या—पीछे भी उस अर्थके सन्मुख संस्कारवाला भी सम्यग्दृष्टि है ऐसा निर्णय करना योग्य है। यह सब उनका दिग्दर्शन है।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

ववहारो—व्यवहारः—विविधिपूर्वकं अवहरणं व्यवहारः, विविशेषाणां अवहरणं व्यवहारः भेदप्ररूपणं पर्यायनिरूपण-मनैक्यप्ररूपणं साकारदर्शनं सापेक्षविवरणमित्यर्थः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब पदों की व्याख्या की जाती है—

ववहारो :—व्यवहार—वि अर्थात् विधिपूर्वक जो अवहरण करना है भेद करना है सो व्यवहार है; वि अर्थात् विशेषोंका अवहरण करना व्यवहार है अर्थात् भेदप्ररूपण करना, पर्यायनिरूपण करना, अनेकताका प्ररूपण करना, साकार दर्शन करना, सापेक्ष विवरण करना आदि सब व्यवहार है, यह भावार्थ हुआ।

भूयत्थो—अभूतार्थः—न स्वयं निरपेक्षतया निरूपाधितया भूतःअर्थः अभूतार्थः। 'भू सत्तायां तथा सति न सन् अर्थः-त्रैकालिसद्भूतत्वानवच्छिन्नः अथवा सन् निरपेक्षः जिरुपाधि-सिद्ध य एवं न स अभूतार्थः। व्यवहारः अभूतार्थः अब हि व्यवहारो न सर्वथा अभूतार्थः किन्तु निश्चयनयापेक्षयाभेद-दृष्ट्याअभूतार्थः।

भूयत्थो—अभुतार्थः—स्वयं निरपेक्षरूपसे निरुपाधिरूपसे न होने वाला अर्थ अभूतार्थ है। अथवा भू धातु सत्ता अर्थमें है सो यह भाव हुआ जो नहीं है अर्थात् त्रैकालिक सद्भूतपनेसे युक्त नहीं है वह अभू-तार्थ है अथवा सत् निरपेक्ष व निरुपाधिसिद्ध को कहते हें सो जो निरपेक्ष व निरुपाधिसिद्ध नहीं ह वह अभूतार्थ है। व्यवहार अभूतार्थ है। यहाँ व्यवहार सर्वथा अभूतार्थ नहीं जानना चाहिए, किन्तु निश्चय-नयकी अपेक्षासे अभेददृष्टिसे व्यवहार अभूतार्थ है ऐसा समझना चाहिए।

भूयत्थो—भूतार्थः सत्यार्थः—

भूयत्थो :—भूतार्थ है, सत्यार्थ है।

देसिदो हु—श्रीमदध्यात्मसाक्षिभिः देशितः कथितः।

देसिदो हु :—श्रीमन्त अध्यात्मके साक्षी सन्त आत्मावों के द्वारा उपदेश किया गया है कहा गया है।

सुद्धणओ—शुद्धनयो निश्चयनयः। अत्र भावोयम्-व्यव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हारनयः अभूतार्थो निश्चयनयस्तु भूतार्थः। अथवा व्यवहारनयो द्वेधाभूतार्थः अभूतार्थश्च सद्भूतोसद्भूत इति यावत्। न केवलं व्यवहारनयो द्विविधः किन्तु शुद्धनयः निश्चयनयः अपि भूतार्थः अभूतार्थः इति शुद्धद्रव्यनिरूपकः शुद्धनिरूपधि-पर्यायप्ररूपक इति यावत्। तत्र कं नयमाश्रित्य जीवः सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रश्ने समाधीयते—

सुद्धणओ—शुद्धनय :—निश्चयनय। यहां यह भाव है—व्यवहार-नय अभूतार्थ है, परन्तु निश्चयनय भुतार्थ है। अथवा व्यवहारनय दो प्रकार के हैं (१) भूतार्थ (२) अभूतार्थ अर्थात् सद्भूत और असद्भूत। सो केवल व्यवहारनय ही दो प्रकारका नहीं है, किन्तु शुद्धनय याने निश्चयनय भी दो प्रकारका है (१) भूतार्थ (२) अभूतार्थ अर्थात् (१) शुद्ध द्रव्य का निरूपण करनेवाला (देखने वाला) (२) शुद्ध निरवधि पर्यायका प्ररूपण करनेवाला। उनमें से किस नयका आश्रय करके जीव सम्यग्दृष्टि होता है ऐसा प्रश्न होने पर समाधान किया जा रहा है—

भूयत्थमस्सिदो-भूतार्थं आश्रितः पूर्वव्याख्यानापेक्षया निश्चयनयमाश्रितः उद्धरव्याख्यानापेक्षया—भूतार्थेपि भूतार्थं शुद्धद्रव्य निरूपकं भूतार्थं आश्रितः।

भूयत्थमस्सिदो :—भूतार्थं आश्रितः—भूतार्थ का आश्रय करने वाला; पूर्वव्यख्यान की अपेक्षासे तो निश्चयनयका आश्रय करनेवाला यह अर्थ है और, उत्तर (द्वितीय) व्याख्यान की अपेक्षासे—"भूतार्थमें भी भूतार्थको अर्थात् शुद्ध द्रव्यका निरूपण करने वाला" यह अर्थ है।

खलु—निश्चयेन नान्य इति पुरूपणगर्भितविधिना।

खलु :—निश्चयसे, वही, अन्य नहीं इस प्रकारके प्ररूणकी विधिसे।

सम्माइट्ठी हवइ :—लब्धसम्यगिष्टि सर्वोत्तमनिरावाध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखमूलदृष्टि प्राप्तवान् सम्यग्दृष्टिर्भवति ।

सम्माइट्ठी हवइ :—प्राप्त की है उत्तम इष्टि जिसने ऐसा होता है अर्थात् सर्वोत्तम निरावाध सुखके मूल (आत्मतत्त्व) की दृष्टिको प्राप्त करने वाला सम्यग्दृष्टि होता है ।

जीवो—दशप्राणधारणात्मकसंज्ञत्वावच्छिन्नो जीवो वहिरात्मत्वं विहाय स्वभावमवमानोन्तरात्मपर्यायेणाविर्भवति ।

जीवो :—दश प्राण धारण स्वरूप संज्ञपनेसे सहित जीव । यहाँ यह सम्बन्धार्थ है कि भुतार्थ का आश्रय करने वाला जीव वहिरात्मपनेको छोड़ कर स्वभाव को मानने वाले वे अन्तरात्मपनेके परिणमनरूपसे व्यक्त होते हैं ।

एवमुक्तप्रकारेणाभूतार्थत्वात्परमार्थतोनुपादेयोपि व्यवहारः सन्मार्गजिगमिषूणां सन्मार्गगामिनामपि केषांचित्कदाचित्प्रयोजन वानिति यथायुक्तानां परमार्थे हताशानां निरुत्साहतामपहरन्निव परमार्थसिद्धयेधस्तन भूमिकानां व्यवहारोपदेशनस्य यथौचित्यमार्यः प्राह—

इस तरह उक्त प्रकार से अभूतार्थ होनेसे परमार्थतः अनुपादेय होने पर भी व्यवहार सन्कार्गमें चलनेकी इच्छा करने वाओंके व सन्मार्गगामियोंके भी किन्हींके कदाचित् प्रयोजनवान है इस कारण यथायुक्त परमार्थमें हताश होनेवालों की निरुत्साहताको मानो दूर करते हुए परमार्थकी सिद्धिके लिए निम्नभूमिकावालोंको व्यवहारका उपदेश उचित है यह बातभी आचार्य कहते हैं—

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं ।
वावहारदेसिदा पुण जे हुअपरमेट्ठिदा भावे ॥१२॥

ये किल विविधस्थान तीव्रमंदपाकादिभिन्नषोडषपाको-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्तीर्णसुवर्णं स्थानीयवाह्यसाधनतत्त्वश्रवणाध्ययननिजचर्चामननभेदाभ्यासभेदाभेदपरिहाररुच्यभेदविचारसम्यक्त्व निर्विकल्पभावनानिर्विकल्प स्थितिविकारक्षया नंतज्ञानादिज्ञानज्योतिचैतन्यरूपोत्तरोत्तरषोडषस्थानोत्तीर्ण परमात्मपदार्थमवलोकितवन्तस्तैःपूर्वानेकपाकसंगच्छमानसुवर्णस्थानीयपूर्वानेकस्थानगापरममानुभवनरुच्यभावात् परमशुद्धध्रुवतत्त्वादेशितया प्रकटीकृतार्चलपूर्णशक्तिमदेकस्वभावः शुद्धनय एव निर्विकल्पानुभवपूर्वभावित्परिज्ञातव्यः। ये पुनरन्तिमपाकोर्त्त र्णशुद्धमुवर्णस्थानीयपरमात्मपदार्थानुभूतिशून्यत्वांद् विविधस्थानगतपाकपच्यमानसुवर्णस्थानीयेविरतिदेशविरतिसकलविरतिक्रियाकलापभेदरत्नत्रयाद्यपरमे भावे स्थितास्तेषां गुणगुणिभेदविशिष्टशक्त्यववोधनपर्यायादिविकल्परूपादेशो निश्चयनयवोधपूर्वकतां धतुं शक्यत्वादधस्तनानेकवर्णिकसुवर्णलाभवत् प्रयोजवान्।

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे हु अपरमेट्ठिदा भावे ॥१२॥

जो नानास्थानीय तीव्र मन्द पाक आदि से भिन्न सोलहपाक पर उत्तीर्ण सुवर्ण की तरह बाह्य साधन, तत्त्वश्रवण, अध्ययन, निजचर्चा, मनन, भेदाभ्यास, भेदपरिहार, अभेदरुचि, अभेदविचार, सम्यतत्त्व, निर्विकल्पभावना, निर्विकल्पस्थिति, विकारक्षय, अनन्तज्ञानादि, ज्ञानज्योति, चैतन्यस्वरूप रूप उत्तोत्तर सोलह स्थानोंमें उत्तीर्ण परमात्मपदार्थका जो अवलोकन करने वाले हैं उनको पूर्व अनेक पाकमें चल रहे सुवर्णकी तरह पूर्व अनेक स्थानोंमें गये अपरम भावोंके अनुभवनकी रुचिका अभाव होनेसे परम शुद्ध तत्त्वका आदेशक होनेके कारण प्रकट किया है अचल पूर्ण शक्तिमान् एक स्वभावको जिसने ऐसा शुद्धनय ही जानना चाहिए (ग्रहण करना चाहिए), क्योंकि निर्विकल्प अनुभवसे पूर्व यह शुद्धनय हीं हुआ करता है। परन्तु जो अन्तिम पाकपर उतरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए सुवर्ण की तरह जो उत्कृष्ट परमात्मपदार्थ है उसके अनुभवसे शून्य होनेसे नानस्थानीय पाकमें गये सुवर्णकी तरह अविरति देशविज्ञति सकलविरति किया समूह व भेदरत्नत्रयादिक अपरम भावमें स्थित हैं उनको गुण गुणीका भेद करके विशिष्ट शक्तियों का समझाना व पर्याय आदि विकल्पों का बताना (व्यवहारनय) अधस्तन अनेक प्रकार के सुवर्णोंके लाभ की तरह प्रयोजनवान है; क्योंकि यह व्यवहार निश्चय-नयकी पूर्वकताको धारण करने में समर्थ हैं अर्थात् ऐसा व्यवहार निश्चयनयके बोधके पूर्व होता है।

ननु सामान्यविशेषात्मके निजात्मनि सति कथं सामान्य-लक्ष्य स्य शुद्धस्योपदेशो युक्तः सत्यं सामान्यविशेषात्मको निजपदार्थ एवानुभाव्यो वर्तते स चैवानुभाव्यो भवति यति-वृषभाणां, किन्त्वेपोनुभवः सामान्यविशेषपक्षरहितो विराजते स कथं प्राप्यः ? तस्योपायः सामान्यतयानुभवः। सामान्यानु-भवेपि विशेषोनुवोभूयत एव पर्यायरहितस्य कस्यचिद्द्रव्यस्य कदाचिदपि सद्भावासिद्धेः। किन्तूपयोगं लक्ष्यं भेदे विकल्पे-ध्रुवे च न निपातयतिविछद्यस्थो ज्ञानीति रहः। स्यान्मतं विशेषरहितस्य कस्यचित्स्वतंत्रस्य सामाग्यनाम्नो वस्तुनो-भावात्कल्पितसामान्यलक्ष्यः खरविषाणवदप्रसिद्धः पुनस्तस्यो-पदेशो वंध्यासुतस्नेहादेशवद्बावदूकत्वमेव प्रथयतीति चेन्न यतो हि यद्यपि यथा विशेषरहितं सामान्यं नास्ति तथा सामान्य रहितः स्वतंत्रः कश्चिद्विशेषोपि नास्ति तथापि येषामज्ञानिनां सामान्यविशेषात्मकेपि पदार्थे विशेषांश एक सकलपरिचित-त्वेनेष्टानिष्टमतिसंपादिताकुलत्वं वरीवर्तत एव तेषांकृते ध्रुवटङ्कोत्कीर्णवन्निश्चलपरमानन्दास्पदनिजपरमात्मप्रसिद्ध्यर्थं सामान्यस्वभावस्यावबोधस्योपदेशो, ज्ञानिनां च प्रमत्तानां स ज्ञानस्वभावस्थैर्यार्थम्। किञ्च सामान्यभावस्य प्रतीतौ तत्रैव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषाविरोधेन सततमुपयोगेकृतनिर्विकल्पाभेदाखडैकनिष्पीतानंतपर्यायवस्तुविषयीकरणादुपादानकारणसदृशकार्यविधिनियमात्पर्यायोपि तदा यथागुणं निर्विकल्पस्वरूपे ह्युपयुज्यते, ततश्च नैर्मल्यविशेषस्तत्परंपरा च पूणशुद्धिकारणं भवति ।

अव यहाँ एक शंका होती है कि निज अत्मातो सामान्यविशेषात्मक है फिर सामान्यमात्रका लक्ष्य करनेवाले शुद्धनयका ही उपदेश क्यों दिया गया युक्त कहा है ? समाधान यह कि यह वात यद्यपि सत्य है कि निज आत्मा सामान्यविशेषात्मक है, सामान्यविशेषात्मक निज पदार्थ ही अनुभव्य (अनुभवमें आने योग्य) हुआ करता है और यतिश्रेष्ठोंको सामान्यविशेषात्मक निज पदार्थ ही अनुभव्य होता है, किन्तु यह अनुभव सामान्यविशेषपक्ष से रहित है विराजता है वह कैसे प्राप्त करने योग्य होता है ? उसका उपाय निज पदार्थका सामान्यतया अनुभव करना है। सामान्यका अनुभव होनेपर भी वहाँ विशेष भी अनुभूत है ही, क्योंकि पर्यायरहित तो कोई भी द्रव्य अपनी सत्ता भी नहीं रख सकता; किन्पु छद्‌मस्थःज्ञानी पुरुष अपने उपयोगको अपने लक्ष्यको भेदमें विकल्प में अध्रुवतत्त्वमें नहीं डालता है। यहाँ यह रहस्य है सो जान लेना चाहिए।

स्यात् ऐसा कहो कि विशेषरहित तो कोई स्वतन्त्र सामान्यनामक वस्तु ही नहीं सो कल्पित सामान्यका लक्ष्य करना गधेके सींगकी तरह अप्रसिद्ध है फिर उसका उपदेश करना तो बन्ध्यापुत्रके स्नेहके कथनकी तरह वावदूकपने को ही प्रकट करना है तो इसका यह समाधान है— कि यह शंका ठीक नहीं हैं, क्योंकि यद्यपि जैसे विशेषरहित सामान्य नहीं है वैसे ही सामान्यरहित स्वतन्त्र कोई विशेष भी नहीं है तो भी जिन अज्ञानी पुरुषोंको सामान्यविशेषादमक पदार्थ होने पर भी विशेष अंश ही सर्वस्वरूपसे परिचित होनेके कारण इष्ट अनिष्ट बुद्धिसे उत्पन्न हुई आकुलता ही बराबर वर्त रही है उनके लिए ध्रुव टङ्कोत्कीणवत् निश्चल परमआनन्द के स्थानभूत निज परमात्मपदार्थकी प्रसिद्धिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ सामान्यस्वभावके अवबोधका उपदेश किया गया है और प्रमत्त (प्रमत्तविरत गुणस्थान तक के) ज्ञानी जीवोके लिए ज्ञानस्वभावमें स्थिर होनेके अर्थ सामन्य स्वभावके अतवोध (ज्ञान करने) का उपदेश किया गया है। और भी क्या—कि सामान्यस्वभावकीं प्रतीति होनेपर वहीं पर ही विशेषका विरोध न करके सतत उपयोगमें किये गये निर्विकल्प अभेद अखण्ड एक और पी ली हैं अनन्त पर्यायें जिसने ऐसे शुद्ध वस्तु को विषय करने से "उपादानकरणसदृश कार्य होता है" इस नियम के अनुसार पर्याय भी उस समय जैसाकि गुण है निर्विकल्पस्वरूपमें उपयुक्त होती है और उससे विशेष निर्मलता होती है और उसको परम्परा पूर्ण शुद्धिका कारण होती है।

अथ कमप्यर्थं जानीयात्पर्यायं गुण वा ज्ञानमात्रेनावलेपः, ज्ञानं हि स्वभाव एवेति श्रुताउत्तमध्यानप्रकरणेपि प्ररूपितं तत्कथं स्वोक्तिधाष्ठ्र्यं सृ्शीसृजतीति चेन्ननिर्विकल्पैकज्ञायकस्वभावाराधनालक्षणसमाधिवलेन निष्पीतानंतपर्यायं सामान्यविशेषात्मकं निष्पक्षमेकं स्वद्रव्यमनुभूतवतां योगीन्द्राणां शुक्लध्याने किमपि ज्ञातंस्यात्तत्रावलेपसम्भतौ नो न वचः किन्तु प्रमत्तानां न सा योग्यतेति हेतोर्निर्विकल्पसहजैकज्ञायकस्वभावनिजपरमात्मपदार्थाववोधस्थैर्यं सन्मार्ग इति प्रेक्षावतां यद्वक्तव्यं वर्तते तदशेषमुक्तमितिदिक्।

अब यहां शङ्का उपस्ति होती है कि किसी भी पदार्थको जाने, गुण को जाने या पर्याय को जाने, जाननेमात्रमें कोई अवलेप नहीं (ऐव नहीं) और ज्ञान तो स्वभाव ही है ऐसा आगममें उत्तमध्यानके प्रकरण में भी कहा गया है फिर क्यों अपने ही कहने का विरोधरूप धृष्टता की जा रही है। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का ठीक नहीं है। निर्विकल्प एक ज्ञायकस्वभावकी आराधनारूप निर्विकल्प समाधिके बलसे निस्पीतानन्तपर्याय सामान्यविशेषात्मक निष्पक्ष एक स्व द्रव्यका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव करने वाले योगीन्द्रों का शुक्लध्यायमें कुछ भी ज्ञात रहे वहाँ पर अवलेप (राग द्वेष) प्रकट होना असंभव है। इस कारण हमारा कहना उनके लिए नहीं है; किन्तु प्रमत्त जीवोंके तो वह योग्यता नहीं है इस कारण निर्विकल्प सहज एक ज्ञायकस्वभाव निज परमात्मपदार्थके अववोधकी स्थिरता सन्मार्ग है ऐसा स्वीकार करने वाले सत्पुरुषोंके प्रति जो कुछ कहना है वह ही समस्त कहा गया है।

अथ निश्चयव्यवहारनिमित्तोपादानद्रव्यपर्यायापेक्षितविवरणं किञ्चत्क्रियते—

अब निश्चय व्यवहार निमित्त उपादान द्रव्य पर्याय का आपेक्षिक विवरण किया जाता है—

अत्र हि मुख्यतया द्रव्यं निश्चयस्य विषयः पर्यायश्च व्यवहारिकः। द्रव्यं त्रिकालस्थायि तच्च पतिक्षणं परिणमनशील वर्तत एव यतस्तस्यानंतानंतक्षणेष्वन्नतानन्तपर्याया भवन्ति किन्तु ते सर्वे परस्परव्यतिरेकिणः। न हि कश्चित्पर्यायो द्वितीयक्षणमास्थातुमर्हतीति हेतोरनन्तपर्यायसमूहो द्रव्यमथवा सर्वविशिष्टपर्यायविरहितो ध्रुव एकरूपोर्थो द्रव्यमिति यत्किञ्चिद्वक्तुं युक्तम्। एतस्मान्निर्विकल्पस्वरूपाद्द्रव्यादाविर्भवन्ति विकल्पाः पर्यायाः ये तदात्वे तदात्मनिवर्तन्ते। अभीष्टशुद्धपर्यायोप्येतस्मादेव सामान्यस्वभावादाविर्भविष्यति। यस्मादाविर्भविष्यति तस्य लक्ष्यो लक्ष्यस्थैर्यञ्च सर्वविकाररहितसामान्यस्वभावत्वात्प्रयतितव्यं वर्तने आपरिसमाप्तेर्द्रव्यलक्ष्यरूपविकल्पस्यापि, भेदाभेदविकल्परहितनिजपरमार्थानुभवपर्यन्तं च एष यत्नः संवरो निर्जरारूपश्च समस्ति।

यहाँ मुख्यता से द्रव्य तो निश्चयका विषय है और पर्याय व्यवहारिक विषय है। द्रव्य त्रिकाल स्थायी है और वह प्रतिक्षण परिणमन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शील है ही जिससे कि उसकी (द्रव्यकी) अनन्तानन्त समयोंमें अनन्तानन्त पर्यायें होती हैं किन्तु वे सब परस्पर व्यतिरेकी (भिन्न-भिन्न) हैं। कोई भी पर्याय दूसरे समय ठहरने को समर्थ नहीं है इस कारण अनन्त पर्यायों का समूह द्रव्य है अथवा सर्व विशिष्ट पर्यायोंसे विरहित ध्रुव एक रूप जो अर्थ है वह द्रव्य है इत्यादि जो कुछ भी कहा जा सकता है कहना युक्त हैं। इस निर्विकल्प स्वरूपी आत्मद्रव्यसे जो विकल्परूप पर्यायें भी प्रकट होती हैं वे उस कालमें उस आत्मामें हैं तदात्मक हैं। अभीष्ट शुद्ध पर्याय भी इस ही सामान्यस्वभावसे प्रकट होंगी। जिससे यह प्रकट होगी उसके लक्ष्य का और उसकी स्थिरताका सर्वविकाररहित सामान्यस्वभाव होनेसे प्रयत्न करना चाहिए और जब तक द्रव्यके लक्ष्यरूप विकल्पकी भी समाप्ति न हो जावे तब उस लक्ष्यके वर्त्तनमें यत्न करना चाहिए। भेदाभेदके विकल्पसे रहित निज परम अर्थके अनुभव पर्यन्त इस यत्न का होना संवररूप भी है निर्जरारूप भी है।

ननु यावन्त आत्मानो मुक्ता मुक्तिमार्गिणो भूताः सन्ति किं ते एतादृशकठिनपरिभाषणमार्जनेषूपयुज्यैवाहोस्विदन्यथा, श्रुति हिं तावदेवं वर्तते यच्छिवभूतिर्योगी तुषमाषभिन्नज्ञानेनैव मुक्तः पशवश्चानेके सम्यग्यदृष्टयश्च संजाता इति चेदुच्यते शिवभूतियोगिनान्यैश्च यैः सम्यग्दर्शनं समुपलब्धं तैरेष सम्यक्त्वानुभवो निजाखंडपारिणामिकभावोन्मुखतयैव संलब्धः। परिभाषणचर्चणादयस्तु विकल्पज्ञानानां परिमार्जनार्थम्। सम्यक्त्वानुभवः खल्वेतेषां सर्वेषां विकल्पानां दूरीभवनेनैव संजायते। इदमनाद्यनन्ताहेतुकासाधारण चैतन्यस्वभावलक्षणपारिणामिकभावस्य कारणत्वेनोपादानं न केवलं सम्यक्त्वपर्यायाविर्भावसमये प्रत्युत सकलमोक्षमार्गपर्यायेषु सद्भूतव्यवहारेष्वेतत्संगच्छत एवाकैवल्याविर्भावात् कैवल्योपलब्धावपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स पारिणामिकभावो वरीवर्तते किन्तु कार्यसमयसारप्रथमक्षणानन्तरं कारणव्यपदेशं नावाप्नोति पुनरपि सूक्ष्मदशा दृश्यताम् शुद्धावस्थायामपि शुद्धपारिणामिकभाव रूपं द्रव्यमुपादानकारणं समस्ति यतश्च निरन्तरं प्रतिक्षणं चाविर्भूतकेवलज्ञानपर्यायाः शुद्धसद्भूतव्यवहारा जिनवरैरूपदिष्टाः।

यहाँ शङ्का होती है कि जितने आत्मा मुक्त हुए हैं, मोक्षमार्गी हुए हैं क्या वे इस प्रकारके कठिन परिभाषण व चर्चा के यत्नमें उपयुक्त होकर ही हुए या अन्य प्रकारसे भी; श्रुति तो इस प्रकारकी है कि शिवभूति मुनितुषमाष भिन्नके ज्ञानसे ही मुक्त हुआ व अनेक पशु भी सम्यग्दृष्टि हुए। इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं—शिवभूति योगीने व जिन अन्य आत्मावोंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया उन सबने जिन अखण्ड पारिणामिक भावकी उन्मुखतासे ही यह सम्यक्त्वानुभव प्राप्त किया। परिभाषण व चर्चा आदिक तो विकल्पज्ञानोंकी शुद्धिके लिए है। सम्यक्त्वका अनुभवतो इन सब विकल्पोंके दूर होनेसे ही होता है। यह अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्यस्वभावरूप परिणामिक भावका कारणरूपसे उपादान (ग्रहण) केवल सम्यत्त्व पर्यायके आविर्भाव (प्रकट होने) के समयमें ही नहीं है, बल्कि समस्त मोक्षमार्गकी पर्यायोंमें सद्भूत व्यवहारोंमें यह उपादान (ग्रहण) चलता रहता ही है जब तक कि पूर्ण कैवल्य प्रकट हो जाता है। कैवल्यकी उपलब्धि होने पर भी वह पारिणामिक भाव तो वर्तता ही रहता है (बना ही रहता है), किन्तु कार्य सयसारके प्रकट होनेके प्रथम क्षण के अनन्तर वह कारण संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है, फिर भी सूक्ष्मदृष्टिसे देखिये तो शुद्ध अवस्थामें भी शुद्ध पारिणामिकभावरूप द्रव्य उपादान कारण है ही, क्योंकि निरन्तर और प्रतिक्षण प्रकट हुई केवलज्ञान पर्यायें, शुद्ध सद्भूतव्यवहार जिनवर देवोंके द्वारा उपदिष्ट हुई हैं (कही गई हैं)।

पर्यायाणां निश्चयकारणं द्रव्यम् बंधमोक्षरूपाणामशुद्ध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धपर्यायाणां द्रव्यत एवाविभू तत्वात् तत्र पूर्वपर्याया निमित्त-रूपास्तथापि वंधपर्याया द्रव्याज्ञानस्य द्रव्यलक्ष्यास्थैर्यस्य साधनतमत्वेन मोक्षपर्यायश्च द्रव्यज्ञानस्य द्रव्यं संलक्ष्य च तत्र निजोपयोगा भेदपरिणतेः साधकतमत्वेन स्वरूपं लभन्ते ।

पर्यायोंका निश्चय करण द्रव्य है, क्योंकि बंधमोक्ष रूप अशुद्ध शुद्ध पर्यायें द्रव्यसे हो आविभू त (प्रकट) होती हैं । वहां पूर्व पर्याय निमित्तरूप हैं तो भी बंधपर्यायें तो द्रव्यके अज्ञानकी व द्रव्यके लक्ष्यकी अस्थिरताकी साधकतमतासे स्वरूपको प्राप्त होती हैं और मोक्ष पर्याय द्रव्यके ज्ञानकी व द्रव्यको लक्ष्य करके उसमें अपने उपयोग के अभेद-परिणमनकी साधकतमता स्वरूपको प्राप्त होती है अर्थात् बनती है ।

द्रव्याज्ञानं द्रव्यलक्ष्यस्थैर्यं वौपाधिकम् तच्च परलक्ष्यात् । एकक्षेत्रावगाहस्थस्य परस्य कर्मण उदयकाले कर्मनाट्यस्या-बुद्धिगम्योपि विशिष्टो विकटः प्रतिभासः संजायते तत्र युज्य-मानोयमात्मा बंधपर्यायं लभते । यश्च तत्राभेदस्वरूपनिजशु-द्धात्मप्रबललक्ष्यसाधकतमत्वेन न युनक्ति तस्य मोक्षपर्यायो भवितुमारभते । प्रारभमाणशुद्धपर्यायास्थैर्यं विभाव एव किन्तु सोवशिष्टरूपो बंधगविभावस्यैव बंधपर्याये युज्मान-त्वावच्छिन्नत्वात् ।

द्रव्य का अज्ञान व द्रव्यके लक्ष्यकी अस्थिरता औपाधिक है और वह परके लक्ष्यसे होता है । एकक्षेत्रावगाहमें स्थित पर द्रव्य कर्मके उदयकालमें कर्मके नृत्यका अबुद्धिगम्य होने पर भी विशिष्ट विकट प्रतिभास होता है उसमें लगने वाला (जुड़ने वाला) यह आत्मा बन्ध-पर्याय को प्राप्त होता है । और जो अभेदस्वरूप निज शुद्धात्माके प्रवल लक्ष्यकी साधकतमतासे उसमें नहीं जुड़ता है उसके मोक्ष पर्याय प्रकट होने लगती है । प्रारंभमाण (प्रारम्भ हुई) शुद्ध शुद्ध पर्यायकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्थिरता भी विभाव ही है किन्तु वह अविशिष्टरूप है, क्योंकि बंधमें ले जाने वाले विभाव परिणाम ही बंधपर्यायमें जुड़ा करते हैं, जोड़ा करते हैं।

अपरंचोत्तरपर्यायस्य पूर्वपर्यायो निमित्तमुपादानं तु द्रव्यम्। ननु द्रव्यस्य सदैव विद्यमानत्वाद्विवक्षितः कश्चिदपि पर्यायः सदाथवा यदा कदाप्यनिय त्या कश्चिदपि भवेदिति चेन्नोपादानस्य सर्वदा विद्यमान त्वेपि पूर्वपर्यायरूपनिमित्तोपस्थितिं विनोत्तरपर्यायविकासयोग्यक्षेत्राभावात्। अत एव च पूर्वपर्यायस्य द्रव्यावस्थत्वेन द्रव्येन्तर्भूतत्वात्। 'पूर्वपर्याययुक्तद्रव्यमुत्तरपर्याययुक्तद्रव्यस्य कारणमिति' सुप्रसिद्धम्।

और भी,—उत्तर पर्यायका पूर्व पर्याय निमित्त है तो उपादान द्रव्य है। यहाँ शङ्का होती है कि द्रव्य तो सदा विद्यमान है सो विवक्षित कोई भी पर्याय सदा रहना चाहिए अथवा जब कभी भी जो चाहे अशुद्ध शुद्ध कुछ भी पर्याय हो जाना चाहिए। इस शङ्का के उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का करना ठीक नहीं है क्योंकि वह उपादान सर्वकाल विद्यमान होने पर भी पूर्व पर्यायरूप निमित्तकी उपस्थितके बिना उत्तर पर्यायके विकासके योग्य क्षेत्र (निजक्षेत्र) नहीं होता है। और इस ही कारण पूर्व पर्यायका द्रव्यमें रहने के कारण द्रव्यमें अन्तर्भाव हो जाने से "पूर्वपर्याययुक्त द्रव्य उत्तरपर्याययुक्त द्रव्यका कारण है" यह बात बिलकुल सुप्रसिद्ध हो जाती है।

अथोत्तरपर्यायस्य पूर्वपरिणामः कुतो निमित्तमिति चेदुच्यते यतो ह्युपादानकारणं तदेव यत्र परिणामः स्यात्परिणामकालेपि च यांद्वद्येत; परन्तु पूर्वपर्याययुत्तरपर्यायों नास्ति नोत्तरपरिणामकाले पूर्वपरिणामो वसतीत्येकं कारणम्, द्वितीयं च पूर्वपर्यायस्य व्यय उत्तरपर्यायकारणम् सद्भावो न।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादानकारणं सद्भावात्मकमेव निमित्तस्तु सद्भावात्मको-सद्भावात्मकश्च ।

अब "उत्तर पर्यायका पूर्व पर्याय कैसे निमित्त होता है ऐसा कहो तो इसके समाधानमें कहते हैं—चूंकि उपादान कारण वह ही होता है जहां कि परिणाम (पर्याय) हो और पर्याय (उस परिणमन) के कालमें भी जो रहे, परन्तु पूर्व पर्याय में उत्तर पर्याय नहीं है और उत्तर पर्यायके समयमें पूर्व पर्याय नहीं बसती (ठहरती) है एक तो यह कारण है; और, दूसरा कारण यह है कि पूर्व पर्यायका व्यय उत्तर-पर्यायका कारण है न कि पूर्व पर्यायका सद्भाव उत्तर पर्यायका कारण। उपादान कारण सद्भावात्मक ही होता है, परन्तु निमित्त (निमित्त कारण) सद्भावात्मक भी होता है और अभावात्मक भी होता है ।

एतद्विवरणेन का प्रयोजिकी ? यत्र पर्याया आविर्भूता आविर्भवन्ति आविर्भविष्यन्ति तस्य नित्यस्थापित एकलक्षणस्य द्रव्यस्य दृष्टया पर्यायेषुत्तरोत्तरं नैर्मल्यं प्रकटीभवति । येषां महायोगिनामन्यार्थस्य पर्यायास्य गुणस्य वा ज्ञानं वर्तते तेषा-मपि निर्विकल्पद्रव्यस्यानुभव आश्रयो वास्त्येव वाह्यवृत्त्यभाव दन्यथा रागद्वेषाश्रयत्वात्प्रमत्तत्वं स्वच्युतिश्च स्यात् । अतो भो हितेषिन् ! यावद्वुद्धिपूर्विका ज्ञप्तिः प्रवर्तते तावत्सवरि-म्भेण त्रैकालिकध्रुवैकस्वरूपसामान्यस्वभावभयाभेदद्रव्यस्वरूपं संलक्षताम् । उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति हेतोरत्राव-सरयुपादानकारणं द्रव्यतयानिर्विकल्पमभेदरूपं वर्तते तथैव कार्यमपि पर्यायतया निर्विकल्पमभेदस्वरूपं भविष्यत्येव ।

इस विवरण से प्रयोजन सिद्ध करने वाली बात क्या मिलती ?

उत्तर—जहाँ पर्यायें प्रकट हुईं, प्रकट होती हैं, प्रकट होवेंगी उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्य स्थापित एक लक्षणवाले द्रव्यकी दृष्टिसे पर्यायोंमें उत्तरोत्तर निर्मलता प्रकट होती है। जिन महायोगियोंके अन्य पदार्थका पर्यायका व गुण का ज्ञान वर्तता है उनके भी निर्विकल्प द्रव्यका अनुभव अथवा आश्रय है ही, क्योंकि उनके बाह्य वृत्तिका अभाव है; अन्यथा राग द्वेष-का आश्रय होनेसे प्रमत्तपना और स्वात्मासे च्युति हो जावेगी। अतः हे हितैषी! जब तक बुद्धिपूर्वक ज्ञप्ति प्रवर्तित होती है तब तक समस्त आरम्भ (प्रयत्न) से त्रैकालिक ध्रुव एकस्वरूप सामान्यस्वभावमय अभेद द्रव्यके स्वरूपकी दृष्टि किया कीजिये। उपादान कारणके समान कार्य होता है इस कारण इस अवसरमें उपादान कारण द्रव्यरूपसे निर्विकल्प अभेदरूप है उस ही प्रकार कार्य भी पर्यायरूपसे निर्विकल्प अभेदस्वरूप होगी ही।

रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसमाधिवलेनात्मन्येवारा-ध्याराधकभावलक्षणाद्वैतभावनमस्कारप्रभावादयमात्मानाकुल-त्वलक्षणं सहजानंदं वेदयते।

रागादि विकल्परूप उपाधिसे रहित परम समाधिके बलसे आत्मामें ही आराध्य आराधकभावरूप अद्वैतभावनमस्कारके प्रभावसे यह आत्मा अनाकुलतारूप सहज आनन्दको अनुभवता है।

आत्मनः सर्वप्रकारेणोपादेयो रागादिभिन्नोयं स्वात्मावि-र्भूतः सहजानंदस्वभावः एतस्योपलब्धिः "रागादिसर्वविभाव-रहितचैतन्यस्वभावमात्रमेवाहम्" इतिभावभासनाया भाव-नाया अनन्तरं भवति। अत्र प्रकृतं तत्त्वमिदम् यद्यद्यपि स्वानु-भूतिदशात्यन्तनिष्पक्षा निर्विकल्पा स्ति तथापि तद्भावना-त्प्राग्निश्चयपक्ष आयात्येव निश्चयनयविषयाबोधमार्गश्च व्यव-हारस्ततः प्रागभवत्येवेति निमित्तव्यवहारौ सम्यगवबुद्ध्य तयो-रविरोधेन मध्यस्थः सन्निजपरमात्पदार्थे स्वमुपयोजयेद्यावा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्निश्चयावलम्बनययत्नोपि विलयमुपयार्न्निर्विकल्पतया सकलशक्तिपरिपूर्णा र्थानुभवः स्याच्च ।

आत्माका सर्व प्रकारसे उपादेय रागादिभिन्न स्वात्मामें प्रकट सहज आनन्दस्वभाव है। इसकी उपलब्धि "रागादि सर्व विभावोंसे रहित चैतन्यस्वभावमात्र ही मैं हूँ" इस भावभासना और भावनाके अनन्तर होती है। यहाँ प्रकृत तत्त्व यह है कि यद्यपि स्वानुभूतिकी दशा अत्यन्त निष्पक्ष व निर्विकल्प है तो भी उसके आनेसे पहिले निश्चय पक्ष आता ही है और निश्चयनयके विषयके परिज्ञानका मार्गस्वरूप व्यवहार उस (निश्चय) से पहिले होता ही है इस प्रकार निमित्त और व्यवहारको भले प्रकार जान करके उन दोनोंके अविरोधसे मध्यस्थ होता हुआ निज परमात्म पदार्थमें अपनेको लगावे जब तक निश्चयके अवलम्बनका यत्न भी विलयको प्राप्त हो जाय और निर्विकल्परूपसे समस्त शक्तियोंसे परिपूर्ण अर्थ का अनुभव हो जाय।

यो हि 'परात्कर्मणो विकार आगच्छति कर्मणश्च दूरीकरणाद्विकारो निवर्तते' इति पश्यति स यद्यप्येवं निमित्तनैमित्तिकभावो वर्तते तथाप्येतच्चिन्तनेन दृष्टौ लक्ष्यभूतः पर एवेतिहेतोः पर लक्ष्ये कर्मदूरीकरणमसंभाव्यम् ।

जो प्राणी "पर कर्मसे विकार आता है और कर्मके दूर करनेसे विकार निवृत्त हो जाता है" ऐसा देखता है वह यद्यपि ऐसा निमित्तनैमित्तिक भाव है तो भी इसके चिन्तनसे दृष्टिमें लक्ष्यभूत पर पदार्थ ही है इस कारण पर पदार्थके लक्ष्यमें कर्मका दूर कर देना असंभव है।

किञ्च पपरदार्थस्य सद्भावोत्तिवृत्तिर्वा नास्मत्परिणत्या परपरिणमनं तस्यैव परस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावपरिणत्या भवति तव कर्मदूरीकरणाभिप्राये परस्यैव लक्ष्यो वर्तते तत्किं कर्म निर्वर्त्स्यते ? न, तस्य लक्ष्ये ह्युपस्थितत्वात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और क्या :—पर पदार्थका सद्भाव व निवृत्ति हमारे परिणमनसे नहीं होता; पर पदार्थका परिणमन उस ही पर पदार्थके द्रव्य क्षेत्र काल भावकी परिणतिसे होता है। तब कर्मके दूर करनेके अभिप्रायमें पर पर पदार्थका ही लक्ष्य वर्तता है सो क्या इस उपायसे कर्म दूर हो सकेंगे ? नहीं, क्योंकि वह तो परके लक्ष्यमें ही उपस्थित (बैठा) है।

अतो मुमुक्षोः कर्तव्यमेतदेव युक्तं यदविकारिनिरपेक्ष-ज्ञानस्वभावं परिचय्य वर्तमानावस्थागतविकारमध्रुवं स्वभाव-विपरीतमहितं ज्ञात्वा पर्यायं गौणीकृत्य स्वभावमाश्रयेत्सो-विकारिस्वभावलक्ष्यबलेन विकृतभावनां तन्निमित्तकर्मणां तेषां नो कर्मणां वाह्यर्थानामुपेक्षितत्वेनैतदाश्रयतादूरीभवनात्स्वयं स्वज्ञानानंदस्वभावं निजपरिणतावनुभविष्यति।

इस कारण मुमुक्षुका कर्तव्य यह ही युक्त है कि अविकारी निर-पेक्ष ज्ञानस्वभावका परिचय करके वर्तमान अवस्थामें आये हुए विकार अध्रुव, स्वभावसे विपरीत व अहित जान करके पर्यायको गौण करके स्वभाव का आश्रय करे; वह अविकारी स्वभावके लक्ष्यके बलसे विकृत भावोंकी तन्निमित्तक कर्मोंकी उन नोकर्मोंकी, बाह्य अर्थोंकी उपेक्षा हो जानेसे स्वयं अपने ज्ञानानन्दस्वभावको निज परिणतिमें अनुभवेगा।

अहो समस्तपरभावभिन्नसकलशक्तिपरिपूर्णनिर्विकार-निजज्ञानस्वभावज्ञानेन प्राणिनां दृष्टिरद्यावधि परसामग्र्यां संरसंयोगे विकारेपूर्णार्थपर्याये वा खचितानुपमनिजज्ञानस्वभा-वाज्ञानंदशायांमविकाराखंडैकरूपतत्त्वालक्षितत्वेन परलक्ष्यस्वा-वश्यंभावित्वात्। स हि परो येन रूपेण लक्षितः यत्रायं च प्राणी युनक्ति स विकृतः खंडरूपोध्रुवोनित्यविपरीतपर्यायस्य द्रव्ये तदात्वे संवद्धत्वेन संयुक्तोस्ति तदा यादृशं कारणी करोति तादृशं कार्यमिति न्यायात्स प्राणी विकारी चाकुलि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तश्च वोभविष्यत्येव । अतः शान्त्य मुक्त्यै वस्तुस्थितरवश्य-मेहवावगन्तव्या ।

अहो समस्त परभावोंसे भिन्न समस्त शक्तियोंसे परिपूर्ण निर्विकार निज ज्ञानस्वभावके अज्ञानसे प्राणियोंकी दृष्टि आज तक पर सामग्रीमें पर संयोगमें, विकारमें व अपूर्ण अर्थपर्यायमें रही है, क्योंकि खचित अनुपम निज ज्ञानस्वभावके अज्ञानकी दशामें अविकार अखण्ड एकरूप तत्त्व अलक्षित हो जानेसे परका लक्ष्य होना अवश्यंभावी है। वह पर अर्थ जिस रूपसे लक्षित हुआ और यह प्राणी जिसमें जुड़ता है वह विकृत है, खण्डरूप है, अध्रुव है और अनित्य पर्यायका द्रव्यमें सिर्फ उस कालमें ही सम्बन्ध होनेसे संयुक्त है; उस समय जिस प्रकारके अर्थको कारणरूप करता है उस प्रकार का कार्य होता है इस न्यायसे वह प्राणी विकारी और अकुलित हुआ ही करेगा। इस वास्ते शान्तिके लिए, मुक्तिके लिए वस्तुकी स्थिति अवश्य ही जान लेना चाहिए।

पर्यायाः स्वद्रव्यादाविर्भवन्ति न निमित्तात्किन्तु परलक्ष्यि-पर्यायाः परंनिमित्तमात्रीकृत्यैव स्वप्रभावेन भवन्ति । अत्रो-पादानकारणं विशिष्टमिदंचित्, आश्रयकारणानि च पराणि । अत्रायं विशेषोवधारितव्यो यदिदमाश्रितत्वविशिष्टेनोपादानेन स्वीकृतं परैर्नात्र कापि चेष्टा कृता किन्त्वत्र परलक्ष्यीकरण-मेवापराधः । विपत्तावत्र निमित्ताद्रागो जातस्तेन च दुःख-भागतो निमित्तं निःसारयेय यतो रागादयो विलयमुपयेयुः इत्येतयोर्द्वयोराशययोः परलक्ष्यः कृत एव कुतो वीतराग-तावसरः स्यात् ।

पर्यायें स्व द्रव्यसे आविर्भूत होती हैं निमित्तसे नहीं, किन्तु परको लक्ष्य करनेवाली पर्यायें परको निमित्तमात्र करके ही अपने प्रभावसे होती हैं। यहाँ उपादान कारण विशिष्ट यही कुछ है और आश्रयरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण पर पदार्थ हैं। यहाँ यह विशेष बात अवधारणकर लेना चाहिए कि यह जो आश्रितपनेरूपसे विशिष्ट उपादानके द्वारा स्वीकृत हुआ है यहाँ पर पदार्थोंके द्वारा कोई भी ,चेष्टा नहीं की गई है, किन्तु यहाँ परका लक्ष्य कर लेना ही अपराध है। इस विपत्तिमें निमित्तसे राग हुआ है और इसीके कारण दुःखका पात्र हुआ हूँ इससे अब निमित्तको मैं हटाऊँ जिससे रागादिक विनाशको प्राप्त हो जावें इस प्रकारके इन अभिप्रायोंमें परका लक्ष्य कर ही लिया गया है फिर वीतरागताका अवसर कहाँ से हो।

यदि पराश्रयत्वसंजातास्वभावभावभूतरागादीन् प्रतिपराश्रयत्वविरोधमविधाय एते पर्याया मत्त उदिता इतिमूलभूतज्ञानस्वभावं संलक्षते तदा पराश्रयत्वाभावेनाअनाद्यनंताशुद्धशुद्धसर्वावस्था वर्तमानैकध्रुव स्वभावाश्रयणाद्वीतरागतावसरो भवति।

यदि पराश्रयतासे उत्पन्न अस्वभावभूत रागादिक के प्रति पराश्रयताका विरोध न करके ऐसा सोच कर कि ये पर्यायें मुझसे उदित हुई हैं इस तरह मूलभूत ज्ञानस्वभावको लक्ष्यमें लेता है तो पराश्रयता का अभाव होनेसे अनादि अनन्त अशुद्ध शुद्ध सभी अवस्थावोंमें वर्तमान एक ध्रुव स्वभाव का आश्रय करनेसे वीतरागताका अवसर होता है।

इत्येवमुक्तप्रकारेण व्यवहारनिश्चयाभ्यां तीर्थतीर्थफलयोर्व्यवस्थितत्वेन यथापदं व्यवहारेण देशितव्यो निश्चयेनादेशितव्यः।

इस तरह उक्त प्रकारसे व्यवहार और निश्चयनयके द्वारा तीर्थ व तीर्थफल व्यवस्थित होनेसे यथापद (पदवीके अनुसार) व्यवहारनयसे उपदेश दिया जाना चाहिए व निश्चयनयसे आदिष्ट (आदेशरूपमें संकेत) किया जाना चाहिए।

एवं निश्चयव्यवहारविरोधध्वंसि प्रमाणमवलम्ब्य निःश-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ङ्कितवस्तुतत्त्वो सकलमुपेक्ष्य निर्मोहः सन्निजपरमात्मपदार्थे रमते स झगिति ज्ञानानंदस्वभावमयं समयसारमवलोकते ।

इस प्रकार निश्चय व व्यवहारनयके विरोधको नष्ट करनेवाले प्रमाणका अवलम्बन करके शंकारहित निश्चित है वस्तु तत्त्व जिसके ऐसा आत्मा सबकी उपेक्षा करके निर्मोह होता हुआ निजपरमात्म पदार्थमें रमण करता है वह शीघ्र ही ज्ञानानन्दस्वभावमय समय-सारको देखता है ।

अथ पदव्याख्या क्रियते—

सुद्धो—शुद्धः शुद्धनय, निश्चयनयः शुद्धनिश्चयनयः, परम-शुद्धनिश्चयनयः त्रैकालिकध्रुवैकस्वरूपप्रधानस्वभावमयस्य वस्तुनो विषयीकरणात् ।

अब पदोंकी व्याख्या की जाती है—

सुद्धो—शुद्धः शुद्धजय, निश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चय-नय । यह सुद्धो शब्दका अर्थ हुआ, क्योंकि यह त्रैकालिक ध्रुव एक-स्वरूप प्रधानस्वभावमय वस्तुको विषय करता है ।

सुद्धादेसो—शुद्धद्रव्यस्य पररहितस्य विभावरहितस्य भेद-विकल्पपर्यायनिरपेक्षस्य कथन यत्र भवति स सुद्धादेशः । एत-द्विषयमवलाकितवतां शुद्धादेशमात्रेणैव प्रयोजनम्, देशनांयाः प्राक्पदव्यामपेक्षणात् ।

सुद्धदेसो—परसे रहित, विभावसे रहित, भेद विकल्प पर्यायसे निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यका जहाँ कथन किया जाता है वह शुद्धादेश है । इस विषयको देखनेवाले आत्मावोंको शुद्धदेश मात्रसे ही प्रयोजन है क्योंकि देशनाकी (सर्व प्रकारके उपदेश की) पहिली पदवीमें ही अपेक्षा हुआ करती है ।

णायव्वो—ज्ञातव्यः निर्विकारसहजानंदज्ञानस्वभावमयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वं संलक्ष्यासावेव निर्विकल्पनयानुभूतव्यः ।

णायव्वो—ज्ञातव्यः—जानना चाहिए अर्थात् निर्विकार सहज आनन्द ज्ञान स्वभावमय निजको लक्ष्यमें लेकर यह ही निज परमात्म पदार्थ निर्विकल्परूपसे अनुभूत किया जाना चाहिए ।

परमभावदरिसीहिं—विभक्तैकनिजात्मद्रव्यध्रुव सहजपारिणामिकभावस्वरूपत्तत्त्वस्वरूपमवलोकितवाद्भः तेषामेवादेशे निःशंकतया प्रवर्तमानत्वात् ।

परमभावदरसीहिं—विभक्त (परसे भिन्न) एक निज आत्म द्रव्य के सहज परिणामिक भावस्वरूप चैतन्य स्वरूपका अवलोकन करने वालों के द्वारा (अनुभूत किया जाना चाहिए) क्योंकि परमभावके द्रष्टा ही उस तत्त्वके आदेशमें निःशंकरूपसे प्रवर्तमान होते हैं ।

ववहारदेसिदा—व्यवहारेण—विकल्पेन— भेदेन—पर्यायेण कदाचिदुपचारेणापि क्वचिद्देशितव्या शुद्धादेशग्रहणासमर्थत्वात् ।

ववहारदेसिदा—व्यवहारेण याने व्यवहारसे, विकल्पसे, भेदसे, पर्यायसे और कभी उपचारसे भी कहीं उपदिष्ट (उपदेशित) किया जाना चाहिए; क्योंकि व्यवहारनय शुद्धका आदेश व ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है ।

पुण—पुनः ग्रहीतव्यस्तु शुद्धनयविषयः तदशक्तिश्चेत् इतिभावे ।

पुण—फिर । "ग्रहण तो करना चाहिए शुद्धनयका ही विषय, परन्तु यदि उस विषयके ग्रहण करनेकी असमर्थता हो तो" इस भावमें "पुण" शब्द आया है ।

जेदु—तु ये । मुख्यं न्यायं प्रयोजनमुद्देश्यं कर्तव्यं संसुच्य सखेदं तु शब्देन संबोध्यन्ते 'परन्तु ये जनाः' ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे दु—परन्तु जो। मुख्य, न्याय, प्रयोजन, उद्देश्य कर्तव्यको अच्छी तरह सूचित करके खेदसहित "तु" शब्दसे जीव संबोधित किये गये हैं—"परन्तु जो जन"।

अपरमे भवेट्ठिदा—हितमभिलषत्यपि मंदमिथ्यात्वे व्यवहारसम्यक्त्वे अविरतसम्यक्त्वेशुभापयोगे भेदास्तन्न रूपे भावे परिणामे स्थिताः।

अपरमे भावेट्ठिदा—कल्याण की इच्छाका भाव होने पर भी जो मन्दमिथ्यात्वमें, व्यवहारसम्यत्तत्वमें, अविरतसम्यत्तत्वमें, शुभोपयोगमें जो भेद हैं विकल्प हैं उनरूप जो अपरम भाव है उसमें स्थित (रहने वाले) प्राणी गण। (ये व्यवहारसे उपदिष्ट किये जाते हैं यह संबंधार्थ है)।

इदमत्र तत्पर्यम्—यद्यप्यज्ञानदशायां कथमपि हिताभिलिप्सायां सत्यं समुद्धरणाय निहितपदानां नदमग्नस्येव व्यवहारनयो हस्तावलम्बो वर्तते तथापि परविरहितसहजचिच्चमत्कारमात्र निजस्वरूपभावमवलोकयतां व्यवहारो न प्रयोजनवानिति व्यवहारेण जीवाजीवपुण्यपापाश्रववंधसंवरनिर्जरामोक्षलक्षणनवतत्त्वानि विज्ञायैकत्वद्योतिना परमशुद्धनिश्चयनयेनैकत्वगुपानीय द्रव्यत एकं क्षेत्रतो व्या!तारंकालतो नियतं भावतः पूर्णविज्ञानघनं विभक्तं स्वमवलोकयन् सर्वविकल्पग्रहमुक्तः सन्निजपरमात्मपदार्थमनुभवेत्। मंगललोकोत्तमशरणभूतानुपमसहजानंदसिद्धेरेषः उपायः।

इति अध्यात्मयोगिन्यायतीर्थपूज्यश्रीमनोहरवर्णि—
श्रीमत्सहजानन्दविरचिते
समयसारभाष्ये पीठिकाधिकारः समाप्तः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ यह तात्पर्य है कि यद्यपि अज्ञानदशामें किसी भी प्रकार हित की इच्छा होने पर सत्य समुद्धारके लिए रखा है कदम जिन्होंने ऐसे जीवोंको व्यवहारनय हस्तावलम्बनरूप है जैसे कि समुद्रमें डूबते हुए पुरुषको काठ आदि कुछ भी हस्तावलम्बनरूप हो जाता है, तो भी परभावसे रहित सहज चैतन्यचमत्कारमात्र निजस्वरूपके मर्मको देखने वाले अन्तरात्मावोंको व्यवहारनय प्रयोजनवान नहीं है; इसलिए व्यवहारनयसे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष रूप नव तत्त्वोंको जान करके एकत्व भावको प्रकट करनेवाले परम शुद्ध निश्चयनयसे एकत्वको प्राप्त कराकर द्रव्यसे एक, क्षेत्रसे व्याप्त, काल से नियत भावसे पूर्ण विज्ञानघन विभक्त निजको देखता हुआ सर्व विकल्पोंके ग्रहणसे मुक्त होता हुआ मोक्षमार्गी पुरुष निज परमात्म-पदार्थका अनुभव करे। मंगल, लोकोत्तम, शरणभूत अनुपम सहज आनन्दकी सिद्धिका यह उपाय है।

योगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरवर्णि श्रीमत् सहजानन्द
द्वारा विरचित समयसारभाष्यमें पीठिकाधिकार
समाप्त हुआ

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१
प्रा० ८०

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० ८०
दि० २७-२-८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया था। जिज्ञा
इस कार्य की बड़
स्वरूप यह भाष्य भ

समिति इस
प्रति आभार प्रदशि

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष
श्री सहजानन

५०)सेठ लक्ष्मीनारायन
५०१) " पन्नालाल दुर्गाप्र
५०१) " नन्हूमल ज्योती

२५१) "

२५१)
२५१
२५
२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi